प्रश्नोपनिषदि
विशिष्टाद्वैतपरकम्
श्रीराघवकृपाभाष्यम्
(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)
भाष्यकाराः – जगद्गुरुरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यमहाराजाः चित्रकूटीयाः

हिमालय
ओङ्कार
जप
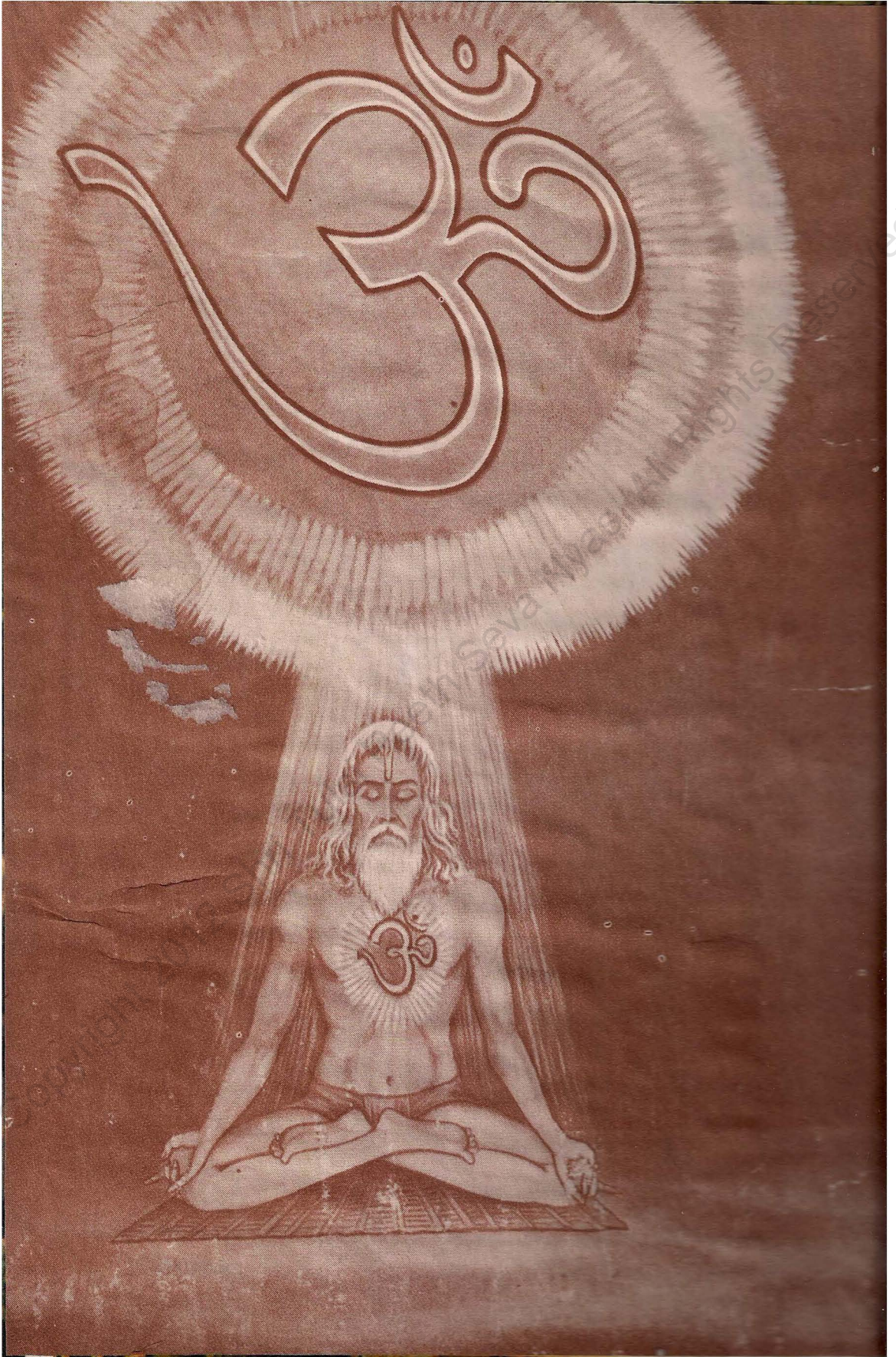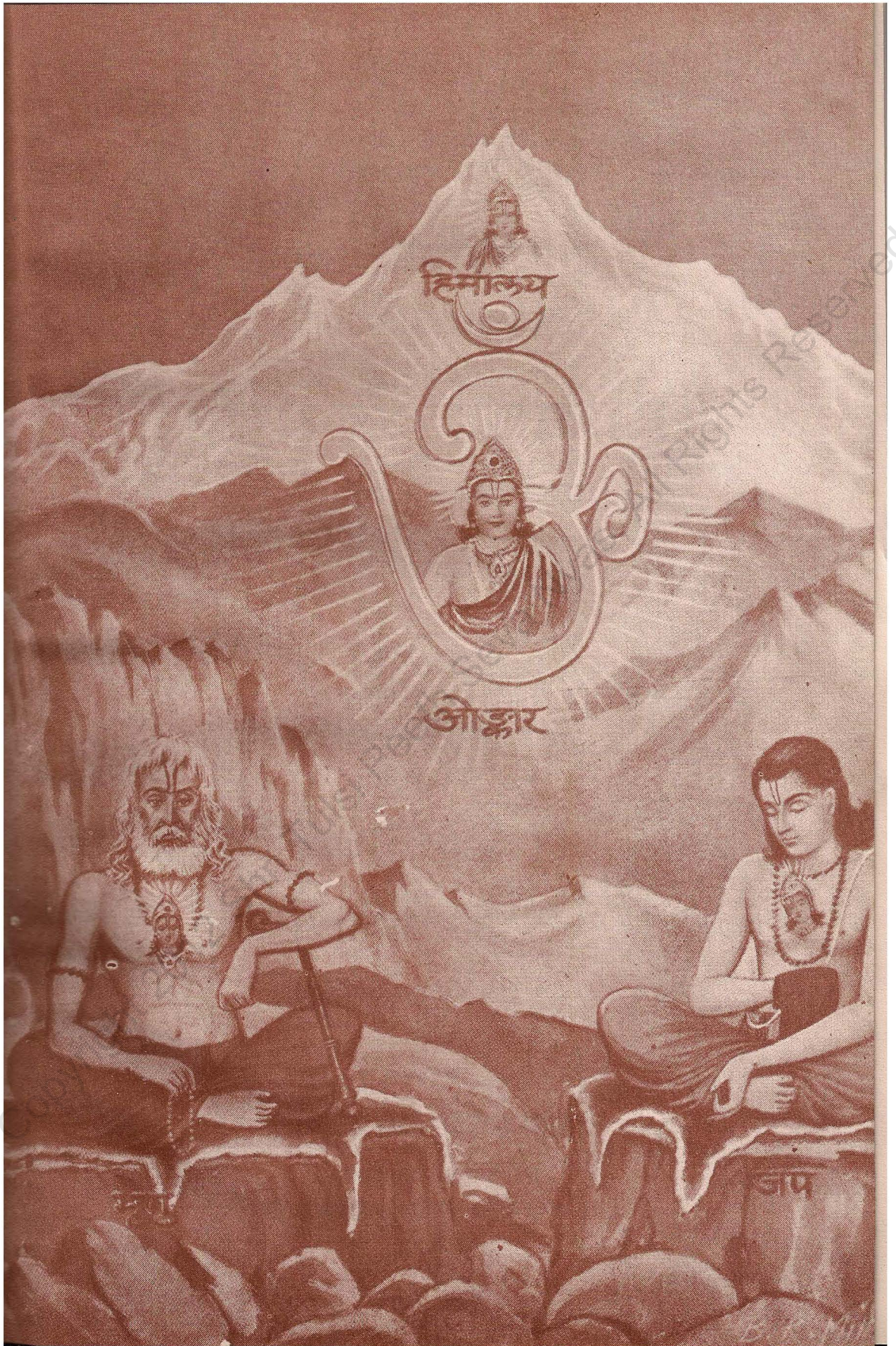
।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।
।। श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ।।

प्रश्नोपनिषदि
(विशिष्टाद्वैतपरकम्)

श्रीराघवकृपाभाष्यम्
(संस्कृत-हिन्दी भाष्य सहितम्)

भाष्यकाराः-
जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्याः
स्वामिरामभद्राचार्यजीमहाराजाः
चित्रकूटीयाः

प्रकाशक :
श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः
तुलसीपीठः, आमोदवनम्
श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं-सतना (म० प्र०)

प्रकाशक :

श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः

तुलसीपीठः, आमोदवनम्,
श्रीचित्रकूटधाम, जनपदं–सतना (म० प्र०)
दूरभाष : ०७६७०–६५४७८

✪

प्रथमसंस्करणम् : ११०० प्रतयः

✪

✪

मूल्यम् : ७०.०० रुपया

✪

प्राप्तिस्थानम् :

तुलसीपीठः, आमोदवनम्, चित्रकूटं जनपदं–सतना (म० प्र०)
वसिष्ठायनम्, (रानीगली) जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग, भोपतवाला, हरिद्वार (उ० प्र०)
श्रीगीताज्ञानमन्दिर, भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) पिन– ३६०००२

✪

मुद्रक :

राघव ऑफसेट
बैजनत्था, वाराणसी– १०
फोन : ३२००३९

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

प्रकाशकीयम्

नीलनीरदसंकाशकान्तये श्रितशान्तये ।
रामाय पूर्णकामाय जानकीजानये नमः ।।

साम्प्रतिकबुद्धिजीविवर्गे पण्डितसमाजे च श्रीवैष्णवसत्समाजे को नाम नाभिनन्दति ? पदवाक्यप्रमाणपारावारीणकवितार्किकचूडामणिसारस्वत-सार्वभौमपण्डितप्रकाण्डपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीवैष्णवकुलतिलकत्रिदण्डीश्वर-श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुरामानन्दाचार्यवाचस्पतिमहामहनीयस्वामिरामभद्राचार्य-महाराजराजिष्णुप्रतिभाधनम् । आचार्यचरणैः श्रीसम्प्रदायश्रीरामानन्दीय-श्रीवैष्णवानुमोदितविशिष्टाद्वैतवादाम्नायमनुसृत्य ईशावास्यादि बृहदारण्यकान्तानामेका-दशोपनिषदां श्रीराघवकृपाभाष्यं प्रणीय भारतीयसंस्कृतवाङ्मयसनातनधर्मावलम्बिनां कियान् महान् उपकारो व्यधायीति तु निर्णेष्यतीतिहासः सोल्लासः । अस्य ग्रन्थरत्नस्य प्रकाशनदायित्वं श्रीतुलसीपीठसेवान्यासाय प्रदाय ऋणिनः कृता वयं श्रीमज्जगद्गुरुभिः वयं तेषां सततमाधमर्ण्यभाजः । अहं धन्यवादं दित्सामि साधुवादं च, वाराणसीस्थाय राघव ऑफसेट मुद्रणालयाध्यक्षाय चन्दनेशाय श्रीविपिनशंकरपाण्ड्यामहाभागाय, येन महता परिश्रमेण निष्ठया च गुरुगौरवेण जनताजनार्दनकरकमलं समुपस्थापितं ग्रन्थरत्नमेतत् । अहमाभारं बिभर्मि सकल-शास्त्रनिष्णातानां पण्डितप्रवराणां मुद्रणदोषनिराकरणचञ्चुनां जगद्गुरुवात्सल्यभाजनानां परमकुशलकर्मणां पं० प्रवर श्रीशिवरामशर्मणाम् पं० कृपासिन्धुशर्मणाम् च ।

अन्ततः साग्रहं निवेदयामि सर्वान् विद्वत्प्रवरान्, यत्—

ग्रन्थरत्नमिदं मत्वा सीताभर्तुरनुग्रहम् ।
निराग्रहाः समर्चन्तु रामभद्रार्यभारतीम् ।।

इति निवेदयते
राघवीया
कु० गीता देवी
प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठसेवान्यासस्य

श्रीराघवाष्टकम्

निशल्या कौसल्या सुखसुरलतातान्तिहृतये ।
यशोवारां राशेरुदयमभिकाङ्क्षन्निव शशी ।
समञ्चन् भूभागं प्रथयितुमरागं पदरतिम् ।
तमालश्यामो मे मनसि शिशुरामो विजयते ।।१।।

क्वचित् क्रीडन् व्रीडाविनतविहगैर्वृन्दविरुदो ।
विराजन् राजीवैरिव परिवृतस्तिग्मकिरणः ।
रजोवृन्दं वृन्दाविमलदलमालामलमलम् ।
स्वलङ्कुर्वन् बालः स इह रघुचन्द्रो विजयते ।।२।।

क्वचिन् माद्यन् माद्यन् मधुनवमिलिन्दार्यचरणा- ।
म्बुजद्वन्द्वो द्वन्द्वापनयविधिवैदग्ध्यविदितः ।
समाकुञ्चत् केशैरिव शिशुघनैः संवृतमिव ।
विधुं वक्त्रं विभ्रन् नरपतितनूजो विजयते ।।३।।

क्वचित् खेलन् खेलन् मृदुमरुदमन्दाञ्चलचल- ।
च्छिरः पुष्पैः पुञ्जैर्विवुधललनानामभिचितः ।
चिदान्दो नन्दन् नवनलिननेत्रो मृदुहसन् ।
लसन् धूलीपुञ्जैर्जगति शिशुरेको विजयते ।।४।।

क्वचिन् मातुः क्रोडे चिकुरनिकरैरंजितमुखः ।
सुखासीनो मीनोपमदृशिलसत्कज्जलकलः ।
कलातीतो मन्दस्मितविजितराकापतिरुचिः ।
पिबन् स्तन्यं रामो जगति शिशुहंसो विजयते ।।५।।

क्वचिद् बालो लालालसितललिताम्भोजवदनो ।
वहन् वासः पीतं विशदनवनीतौदनकणान् ।

विलुण्ठन् भूभागे रजसि विरजा सम्भृत इव ।
तृषा ताम्यत्कामो भवभयविरामो विजयते ।।६।।

क्वचिद् राज्ञो हर्षं प्रगुणयितुकामः कलगिरा ।
निसिञ्चन् पीयूषं श्रवणपुटके सम्मतसताम् ।
विरिंगन् पणिभ्यां वनरुहपदाभ्यां कलदृशा ।
निरत्यन् नैरारश्यं नवशशिकरास्यो विजयते ।।७।।

क्वचिन् नृत्यन् छायाछ्छुपितभवभीतिर्भवभञो ।
दधानोऽलंकारं विगलितविकारं शिशुवरः ।
पुरारातेः पूज्यः पुरुषतिलकः कन्दकमनः ।
अयोध्यासौभाग्यं गुणितमिहरामो विजयते ।।८।।

जयत्यसौ नीलघनावदातो ।
विभा विभातो जनपारिजातः ।
शोभा समुद्रो नरलोकचन्द्रः ।
श्रीरामचन्द्रो रघुचारुचन्द्रः ।।९।।

ईशावास्यसमारब्धाः बृहदारण्यकान्तिमाः ।
ऐकादशोपनिषदो विशदाः श्रुतिसम्मताः ।।१०।।

श्रीराघवकृपाभाष्यनाम्ना भक्तिसुगन्धिना ।
पुण्यपुष्पोत्करेणेड्याः मया भक्त्या प्रपूजिताः ।।११।।

क्वचित्क्वचित् पदच्छेदः क्वचिदन्वययोजना ।
क्वचिच्छास्त्रार्थपद्धत्या पदार्थाः विशदीकृताः ।।१२।।

खण्डनं परपक्षाणां विशिष्टाद्वैतमण्डनम् ।
चन्दनं वैष्णवसतां श्रीरामानन्दनन्दनम् ।।१३।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं भूषितं सुरभाषया ।
भाषितं भव्यया भक्त्या वेदतात्पर्यभूषया ।।१४।।

प्रमाणानि पुराणानां स्मृतीनामागमस्य च।
तथा श्रीमानसस्यापि दर्शितानि स्वपुष्टये।।१५।।

प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दञ्चेति यथास्थलम्।
प्रमाणत्रितायं ह्यत्र तत्वत्रयविनिर्णयम्।।१६।।

विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तदर्पणं श्रुतितर्पणम्।
अर्पणं रामभद्रस्य रामभद्रसमर्पणम्।।१७।।

यदि स्युः त्रुटयः काश्चित्ताः ममैवाल्पमेधसः।
यदत्र किञ्चिद्वैशिष्ट्यं तच्छ्रीरामकृपाफलम्।।१८।।

रुद्रसंख्योपनिषदां मया भक्त्या प्रभाषितम्।
श्रीराघवकृपाभाष्यं शीलयन्तु विमत्सराः।।१९।।

इति मंगलमाशास्ते
श्रीवैष्णवविद्वत्प्रीतिवशंवदो राघवीयो जगद्गुरु रामानन्दाचार्यो स्वमिरामभद्राचार्यः
अधिचित्रकूटम्।

●

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

उपोद्घात

नीतानीरजसंकाशकान्तये श्रितशान्तये।
रामाय पूर्णकामाय जानकी जानये नमः ।।

प्रश्नोपनिषद् के नाम से ही इसके वर्ण्य विषयों का स्वयं ही बोध हो जाता है। इसमें छः ऋषियों द्वारा महर्षि पिप्पलादि से ब्रह्म विषयक प्रश्न किये गये हैं। इसी उपनिषद् से प्रश्न परम्परा का जन्म होता है। आज की परिस्थिति में प्रायशः या तो किसी को चुप कराने के लिये अथवा किसी की योग्यता जानने के लिए प्रश्न किये जाते हैं जबकि पहले अपनी ही जिज्ञासा को शान्त करने के लिए और अध्यात्म के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण ज्ञान के लिये प्रश्न किये जाते थे।

प्रश्नकर्त्ता छः ऋषियों ने इसी प्राचीन परम्परा का निर्वहण करते हुए बड़े ही रोचक शैली में अपने प्रश्न प्रस्तुत किये हैं। यहाँ अध्ययन से स्वयं स्पष्ट हो जायेगा कि जिस अद्भुत वाणी की कौशल से कठिन से कठिन आध्यात्मिक प्रश्नों की बड़ी ही सुगमता और सरलता से समाधान किया गया है। यह समग्र वाणी में समग्र वैदिक साहित्य में अपने प्रकार का अकेला है। मैंने हिन्दी तथा संस्कृत में श्रीराघवकृपाभाष्य लिखकर इस उपनिषद् के सिद्धान्तों को सार्वजनिक जीवन में प्रस्तुत करने की एक ईश्वर प्रेरित चेष्टा की है।

मैं आशान्वित हूँ कि यह विवरण सभी श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवों, सनातन धर्मावलम्वियों, हिन्दी तथा संस्कृत भाषा के रसिकों एवं अध्यात्म प्रेमियों को बहुत लाभप्रद होगा।

।। इति मंगलमाशास्ते
श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्यस्वामी रामभद्राचार्य चित्रकूट ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

वाचस्पति, श्री तुलसी पीठाधीश्वर
जगद्गुरू रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
तुलसीपीठ, आमोदवन, चित्रकूट, जि. सतना (म.प्र.)

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, विद्यावारिधि, वाचस्पति परमहंस परिव्राजिकाचार्य, आशुकवि यतिवर्य प्रसथानत्रयी भाष्यकार धर्मचक्रवर्ती अनन्तश्री समलंकृत

श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

पूज्यपाद

श्री श्री स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज

का

संक्षिप्त जीवन वृत्त

आविर्भाव

आपका अविर्भाव १४ जनवरी १९५० तदनुसार मकर संक्राति की परम पावन सान्ध्य बेला में वसिष्ठ गोत्रीय उच्च धार्मिक सरयूपारीण ब्राह्मण मिश्र वंश में उत्तर-प्रदेश के जौनपुर जनपद के पवित्र ग्राम शाडीखुर्द की पावन धरती पर हुआ। सर्वत्र आत्मदर्शन करने वाले हरिभक्त, या मानवता की सेवा करने वाले दानवीर, या अपनी मातृभूमि की रक्षा में प्राण बलिदान करने वाले शूर-वीर योद्धा, देशभक्त, को जन्म का सौभाग्य तो प्रभुकृपा से किसी भी माँ को मिल जाता है। परन्तु भक्त, दाता और निर्भीक तीनों गुणों की संपदा से युक्त बालक को जन्म देने का परम श्रेय अति विशिष्ठ भगवत् कृपा से किसी विरली माँ को ही प्राप्त होता है। अति सुन्दर एवं दिव्य बालस्वरूप आचार्य-चरण को जन्म देने का परम सौभाग्य धर्मशीला माता श्रीमती शची देवी और पिताश्री का गौरव पं० श्रीराजदेव मिश्रजी को प्राप्त हुआ।

आपने शैशव अवस्था में ही अपने रूप, लावण्य एवं मार्धुय से सभी परिवार एवं परिजनों को मोहित कर दिया। आप की बाल क्रीड़ाएँ अद्भुत थी। आपके श्वेतकमल समान सुन्दर मुख मण्डल पर बिखरी मधुर मुस्कान, हर देखने वाले को सौम्यता का प्रसाद बाँटती थी। आपका विस्तृत एवं तेजस्वी ललाट, आपके अपार शस्त्रीय ज्ञानी तथा त्रिकालदर्शी होने का पूर्व संकेत देता था। आपका प्रथम दर्शन मन को शीतलता प्रदान करता था। आपके कमल समान नयन उन्मुक्त हास्यपूर्ण मधुर चितवन चंचल बाल क्रीड़ाओं की चर्चा शीघ्र ही किसी महापुरुष के प्राकट्य की शुभ सूचना की भान्ति दूर-दूर तक फैल गई, और यह धारणा बन गई कि

यह बालक असाधारण है। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' की कहावत को आपने चरितार्थ किया।

भगवत् इच्छा

अपने प्रिय भक्त को सांसारिक प्रपञ्चों से दूर रखने के लिए विधाता ने आचार्य वर के लिए कोई और ही रचना कर रखी थी। जन्म के दो महीने बाद ही नवजात शिशु की कोमल आँखों को रोहुआ रोग रूपी राहू ने तिरोहित कर दिया। आचार्य प्रवर के चर्मनेत्र बन्द हो गए। यह हृदय विदारक दुर्घटना प्रियजनों को अभिशाप लगी, परन्तु नवजात बालक के लिए यह वरदान सिद्ध हुई। अब तो इस नन्हे शिशु के मन-दर्पण पर परमात्मा के अतिरिक्त जगत् के किसी भी अन्य प्रपञ्च के प्रतिबिम्बित होने का कोई अवसर ही नहीं था। आपको दिव्य प्रज्ञा-चक्षु प्राप्त हो गए। आचार्य प्रवर ने भगवत् प्रदत्त अपनी इस अन्तर्मुखता का भरपूर उचित उपयोग किया। अब तो दिन-रात परमात्मा ही आपके चिन्तन, मनन और ध्यान का विषय बन गए।

आरम्भिक शिक्षा

अन्तर्मुखता के परिणामस्वरूप आपमें दिव्य मेधाशक्ति और अद्भुत स्मृति का उदय हुआ, जिसके फलस्वरूप कठिन से कठिन श्लोक, कवित्त, छन्द, सवैया आदि आपको एक बार सुनकर सहज कण्ठस्थ हो जाते थे। मात्र पांच वर्ष की आयु में आचार्यश्री ने सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता तथा मात्र आठ वर्ष की शैशव अवस्था में पूज्य पितामह श्रीयुत् सूर्यबली मिश्र जी के प्रयासों से गोस्वामी तुलसीदास जी रचित सम्पूर्ण रामचरितमानस क्रमबद्ध पंक्ति, संख्या सहित कण्ठस्थ कर ली थी। आपके पूज्य पितामह आपको खेत की मेड़ पर बिठाकर आपको एक-एक बार में श्रीमानस के पचास पचास दोहों की आवृत्ति करा देते थे। हे महामनीषी, आप उन सम्पूर्ण पचास दोहों को उसी प्रकार पंक्ति क्रम संख्या सहित कण्ठस्थ कर लेते थे। अब आप अधिकृत रूप से श्रीरामचरितमानससरोवर के राजहंस बन कर श्रीसीता-राम के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम और ध्यान में तन्मय हो गए।

उपनयन एवं दीक्षा

आपका पूर्वाश्रम का नाम 'गिरिधर-मिश्र' था। इसलिए गिरिधर जैसा साहस, भावुकता, क्रान्तिकारी स्वभाव, रसिकता एवं भविष्य निश्चय की

दृढ़ता तथा निःसर्ग सिद्ध काव्य प्रतिभा इनके स्वभाविक गुण बन गये। बचपन में ही बालक गिरिधर लाल ने छोटी-छोटी कविताएँ करनी प्रारम्भ कर दी थीं। २४ जून १९६१ को निर्जला एकादशी के दिन 'अष्टवर्ष ब्राह्माणमुपनयीत' इस श्रुति-वचन के अनुसार आचार्यश्री का वैदिक परम्परापूर्वक उपनयन संस्कार सम्पन्न किया गया तथा उसी दिन गायत्री दीक्षा के साथ ही तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान् सकलशास्त्र-मर्मज्ञ पं० श्रीईश्वरदास जी महाराज जो अवध-जानकीघाट के प्रवर्तक श्री श्री १०८ श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज के परम कृपापात्र थे, इन्हें राम मन्त्र की दीक्षा भी दे दी।

उच्च अध्ययन

आपमें श्रीरामचरितमानस एवं गीताजी के कण्ठस्थीकरण के पश्चात् संस्कृत में उच्च अध्ययन की तीव्र लालसा जागृत हुई और स्थानीय आदर्श श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय में पाँच वर्ष पर्यन्त पाणिनीय व्याकरण की शिक्षा सम्पन्न करके आप विशेष अध्ययन हेतु वाराणसी आ गये। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय की १९७३ शास्त्री परीक्षा में विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर एक स्वर्ण पदक प्राप्त किया एवं १९७६ की आचार्य की परीक्षा में समस्त विश्वविद्यालय में छात्रों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर पाँच स्वर्ण पदक तथा एक रजत पदक प्राप्त किया। वाक्पटुता एवं शास्त्रीय प्रतिभा के धनी होने के कारण आचार्यश्री ने अखिल भारतीय संस्कृत अधिवेशन में सांख्य, न्याय, व्याकरण, श्लोकान्त्याक्षरी तथा समस्यापूर्ति में पाँच पुरस्कार प्राप्त किये, एवं उत्तर प्रदेश को १९७४ की 'चलवैजयन्ती' प्रथम पुरस्कार दिलवाया। १९७५ में अखिल भारतीय संस्कृत वाद-विवाद प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त कर तत्कालीन राज्यपाल डॉ० एम० चेन्ना रेड्डी से कुलाधिपति 'स्वर्ण पदक' प्राप्त किया। **इसी प्रकार आचार्यचरणों ने शास्त्रार्थों एवं भिन्न-भिन्न शैक्षणिक प्रतियोगिताओं में अनेक शील्ड, कप एवं महत्वपूर्ण शैक्षणिक पुरस्कार प्राप्त किये।** १९७६ वाराणसी साधुबेला संस्कृत महाविद्यालय में समायोजित शास्त्रार्थ आचार्यचरण प्रतिभा का एक रोमांचक परीक्षण सिद्ध हुआ। इसमें आचार्य अन्तिम वर्ष के छात्र, प्रत्युत्पन्न मूर्ति, शास्त्रार्थ-कुशल, श्री गिरिधर मिश्र ने 'अधातु परिष्कार' पर पचास विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा एवं शास्त्रीय युक्तियों से अभिभूत करके निरुत्तर करते हुए सिंहगर्जनपूर्वक तत्कालीन विद्वान् मूर्धन्यों को परास्त किया था। पूज्य आचार्यश्री ने सं०वि०वि० के व्याकरण विभागाध्यक्ष

पं० श्री रामप्रसाद त्रिपाठी जी से भाष्यान्त व्याकरण की गहनतम शिक्षा प्राप्त की एवं उन्हीं की सन्निद्धि में बैठकर न्याय, वेदान्त, सांख्य आदि शास्त्रों में भी प्रतिभा ज्ञान प्राप्त कर लिया एवं 'अध्यात्मरामायणे अपणिनीयप्रयोगाणां विमर्श:' विषय पर अनुसन्धान करके १९८१ में विद्यावारीधि (Ph.D) की उपाधि प्राप्त की। **अनन्तर "अष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रं शाब्दबोध समीक्षा" इस विषय पर दो हजार पृष्ठों का दिव्य शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करके आचार्य चरणों ने शैक्षणिक जगत् की सर्वोत्कृष्ट अलंकरण उपाधि वाचस्पति" (Dlit) प्राप्त की।**

विरक्त दीक्षा

मानस की माधुरी एवं भागवतादि सद्ग्रन्थों के अनुशीलन ने आचार्य-चरण को पूर्व से ही श्री सीतारामचरणानुरागी बना ही दिया था। अब १९ नवम्बर १९८३ की कार्तिक पूर्णिमा के परम-पावन दिवस को श्रीरामानन्द सम्प्रदाय में विरक्त दीक्षा लेकर आचार्यश्री ने एक और स्वर्ण सौरभ-योग उपस्थित कर दिया। पूर्वाश्रम के डॉ० गिरिधर मिश्र अब श्रीरामभद्रदास नाम से समलंकृत हो गये।

जगद्गुरु उपाधि

आपने १९८७ में श्रीचित्रकूट धाम में श्रीतुलसीपीठ की स्थापना की। उसी समय वहाँ के सभी सन्त-महान्तों के द्वारा आपको श्रीतुलसीपीठाधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित किया और ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दशहरा के परम-पावन दिन वि० सम्वत् २०४५ तदनुसार २४ जून १९८८ को वाराणसी में आचार्यश्री का काशी विद्वत् परिषद् एवं अन्य सन्तमहान्त विद्वानों द्वारा चित्रकूट श्रीतुलसीपीठ के जगद्गुरु रामानन्दाचार्य पर पर विधिवत अभिषेक किया गया एवं ३ फरवरी १९८९ को प्रयाग महाकुम्भ पर्व पर समागत सभी श्री रामानन्द सम्प्रदाय के तीनों अखाड़ों के श्रीमहन्तों चतु:सम्प्रदाय एवं सभी खालसों तथा सन्तों द्वारा चित्रकूट सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्य महाराज को सर्वसम्मति से समर्थनपूर्वक अभिनन्दित किया।

विलक्षणता

आपके व्यक्तित्व में अद्भुत विलक्षणता है। जिनमें कुछ उल्लेखनीय हैं कोई भी विषय आपको एक ही बार सुनकर कण्ठस्थ हो जाता है और वह कभी विस्मृत नहीं होता। इसी विशेषता के परिणामस्वरूप जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य

जी ने समस्त तुलसी साहित्य अर्थात् तुलसीदास जी के बारहों ग्रन्थ, सम्पूर्ण रामचरितमानस, द्वादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, नारद-भक्तिसूत्र, भागवद्गीता,शाण्डिल्य सूत्र, बाल्मीकीयरामायण व समस्त आर्य ग्रन्थों के सभी उपयोगी प्रमुख अंश हस्तामलकवत् कण्ठस्थ कर लिये। आचार्यश्री हिन्दी एवं संस्कृत के आशुकवि होने के कारण समर्थ रचनाएँ भी करते हैं। वसिष्ठ गोत्र में जन्म लेने के कारण आचार्यवर्य श्रीराघवेन्द्र की वात्सल्य भाव से उपासना करते हैं। आज भी उनकी सेवा में शिशु रूप में श्री राघव अपने समस्त परिकर खिलौने के साथ विराजमान रहते हैं। आचार्यवर्य की मौलिक विशेषता यह है कि इतने बड़े पद को अलंकृत करते हुए भी आपका स्वभाव निरन्तर निरहंकार, सरल तथा मधुर है। विनय, करुणा, श्रीराम-प्रेम, सच्चरित्रता आदि अलौकिक गुण उनके सन्तत्त्व को ख्यापित करते हैं। कोई भी व्यक्ति एकबार ही उनके पास आकर उनका अपना बन जाता है। हे भारतीय संस्कृति के रक्षक! **आप अपनी विलक्षणकथा शैली से श्रोताओं को विभोर कर देते हैं।** माँ सरस्वती की आप पर असीम कृपा है। आप वेद-वेदान्त, उपनिषद्, दर्शन, काव्यशास्त्र व अन्य सभी धार्मिक ग्रन्थों पर जितना अधिकारपूर्ण प्रवचन करते हैं उतना ही दिव्य प्रवचन भगवान् श्रीकृष्ण की वाङ्मय मूर्ति महापुराण **श्रीमद्भागवत पर भी करते हैं।** आप सरलता एवं त्याग की दिव्य मूर्ति हैं। राष्ट्र के प्रति आपकी सत्यनिष्ठ स्पष्टवादिता एवं विचारों में निर्भीकता जन-जन के लिए प्रेरणादायक है। आपके दिव्य प्रवचनों में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की त्रिवेणी तो प्रवाहित होती है, साथ ही राष्ट्र का सागर भी उमड़ता है। जिसे आप अपनी सहज परन्तु सशक्त अभिव्यक्ति की गागर में भर कर अपने श्रद्धालु श्रोताओं को अवगाहन कराते रहते हैं।

आपका सामीप्य प्राप्त हो जाने के बाद जीव कृत्य-कृत्य हो जाता है। धन्य हैं वे माता-पिता जिन्होंने ऐसे 'पुत्ररत्न' को जन्म दिया। धन्य हैं वे सद्गुरु जिन्होंने ऐसा भागवत् रत्नाकर समाज की दिया। हे श्रेष्ठ सन्त शिरोमणि ! हम सब भक्तगण आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर गौरवान्वित हैं।

साहित्य सृजन

आपने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी एवं संस्कृत के अनेक आयामों को महत्त्वपूर्ण साहित्यिक उपादान भेंट किये। काव्य, लेख, निबन्ध, प्रवचन संग्रह एवं दर्शन क्षेत्रों में आचार्यश्री की मौलिक रचनाएँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

इस प्रकार आचार्यश्री अपने व्यक्तित्व, कृतित्व से श्रीराम-प्रेम एवं सनातन धर्म के चतुर्दिक प्रचार व प्रसार के द्वारा सहस्राधिक दिग्भ्रान्त नर-नारियों को सनातन धर्मपीयूष से जीवनदान करते हुए अपनी यश:सुरभि से भारतीय इतिहास वाटिका को सौरभान्वित कर रहे हैं। तब कहना पड़ता है कि—

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।

❀ ❀ ❀

संत सरल चित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरन रति देहु।।

धर्माचार्य परम्परा :–

भाष्यकार !

प्राचीन काल में धर्माचार्यों की यह परम्परा रही है कि वही व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय के आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया जाता था, जो उपनिषद्, गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तानुसार वैदुष्यपूर्ण वैदिक भाष्य प्रस्तुत करता था। जिसे हम 'प्रस्थानत्रयी' भाष्य कहते हैं, जैसे शंकराचार्य आदि। आचार्यप्रवर ने इसी परम्परा का पालन करते हुए सर्वप्रथम नारदभक्तिसूत्र पर "श्रीराघवकृपाभाष्यम्" नामक भाष्य ग्रन्थ की रचना की। उसका लोकार्पण १७ मार्च १९९२ को तत्कालीन उप राष्ट्रपति डॉ० शंकरदयाल शर्मा द्वारा सम्पन्न हुआ।

पूज्य आचार्यचरण के द्वारा रचित **'अरुन्धती महाकाव्य' का समर्पण** समारोह दिनांक ७ जुलाई ९४ को भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ० शंकरदयाल शर्मा जी के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ।

इसी प्रकार आचार्यचरणों ने एकादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर रामानन्दीय श्रीवैष्णव सिद्धान्तानुसार भाष्य लेखन सम्पन्न करके विशिष्टाद्वैत अपनी श्रुतिसम्मत जगद्गुरुत्व को प्रमाणित करके इस शताब्दी का कीर्तिमान स्थापित किया है।

आप विदेशों में भी भारतीय संस्कृति का विश्वविश्रुत ध्वज फहराते हुए सजगता एवं जागरूकता से भारतीयधर्माचार्यों का कुशल प्रतिनिधित्व करते हैं।

आचार्यश्री के प्रकाशित ग्रन्थ

१. मुकुन्दस्मरणम् (संस्कृत स्तोत्र काव्य) भाग–१–२
२. भरत महिमा
३. मानस में तापस प्रसंग
४. परम बड़भागी जटायु
५. काका बिदुर (हिन्दी खण्ड काव्य)
६. माँ शबरी (हिन्दी खण्ड काव्य)
७. जानकी-कृपा कटाक्ष (संस्कृत स्तोत्र काव्य)
८. सुग्रीव की कुचाल और विभीषण की करतूत
९. अरुन्धती (हिन्दी महाकाव्य)
१०. राघव गीत-गुञ्जन (गीत काव्य)
११. भक्ति-गीता सुधा (गीत काव्य)
१२. श्री गीता तात्पर्य (दर्शन ग्रन्थ)
१३. तुलसी साहित्य में कृष्ण-कथा (समीक्षात्मक ग्रन्थ)
१४. सनातन धर्म विग्रह-स्वरूपा गौ माता
१५. मानस में सुमित्रा
१६. भक्ति गीत सुधा (गीत काव्य)
१७. श्रीनारदभक्तिसूत्रेषु राघवकृपाभाष्यम् (हिन्दी अनुवाद सहित)
१८. श्री हनुमान चालीसा (महावीरी व्याख्या)
१९. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
२०. आजादचन्द्रशेखरचरितम् (खण्डकाव्य) संस्कृत
२१. प्रभु करि कृपा पाँवरि दीन्ही
२२. राघवाभ्युदयम् (संस्कृत नाटक)

आचार्यश्री के शीघ्र प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

१. हनुमत्कौतुक (हिन्दी खण्ड काव्य)
२. संस्कृत शतकावली (क) आर्याशतकम् (ख) सीताशतकम्
(ग) राघवेन्द्रशतकम् (घ) मन्मथारिशतकम् (ङ) चण्डिशतकम्
(च) गणपतिशतकम् (छ) चित्रकूटशतकम् (ज) राघवचरणचिह्नशतकम्
३. गंगामहिम्नस्तोत्रम् (संस्कृत)
४. संस्कृत गीत कुसुमाञ्जलि
५. संस्कृत प्रार्थनाञ्जलि
६. कवित्त भाण्डागारम् (हिन्दी)

●

।। श्रीराघवो विजयतेतराम् ।।

आचार्यचरणानां बिरुदावली

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।
रामानन्दाचार्यं मन्दाकिनीविमलसलिलासिक्तम् ।
तुलसीपीठाधीश्वरदेवं जगद्गुरुं वन्दे ।।

श्रीमद् सीतारामपादपद्मपरागमकरन्दमधुव्रतश्रीसम्प्रदायप्रवर्तकसकलशास्त्रार्थ-महार्णवमन्दरमतिश्रीमदाद्यजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यचरणारविन्दचञ्चरीकः समस्त-वैष्णवालंकारभूताः आर्षवाङ्मयनिगमागमपुराणेतिहाससन्निहितगम्भीरतत्वान्वेषण-तत्पराः पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणाः सांख्ययोगन्यायवैशेषिकपूर्वमीमांसावेदान्तनारद-शाण्डिल्यभक्तिसूत्रगीतावाल्मीकीयरामायणः भागवतादिसिद्धान्तबोधपुरःसरसमधि-कृताशेषतुलसीदाससाहित्य-सौहित्यस्वाध्यायप्रवचनव्याख्यानपरमप्रवीणाः सनातनधर्म-संरक्षणधुरीणाः चतुराश्रमचातुर्वर्ण्यमर्यादासंरक्षणविचक्षणाः अनाद्यविच्छिन्नसद्गुरु-परम्पराप्राप्तश्रीमद्सीतारामभक्तिभागीरथीविगाहनविमलीकृतमानसाः श्रीमद्रामचरित-मानसराजमरालाः सततं शिशुरूपराघवलालनतत्पराः समस्तप्राच्यप्रतीच्यविद्या-विनोदितविपश्चितः राष्ट्रभाषागीर्वाणगिरामहाकवयः विद्वन्मूर्धन्याः श्रीमद्रामप्रेम-साधनधनधन्याः शास्त्रार्थरसिकशिरोमणयः विशिष्टाद्वैतवादानुवर्तिनः परमहंस-परिव्राजकाचार्यत्रिदण्डी वर्याः श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठाः प्रस्थानत्रयीभाष्यकाराः श्रीचित्रकूटस्थ-मन्दाकिनीविमलपुलिननिवासिनः श्रीतुलसीपीठाधीश्वराः श्रीमद्जगद्गुरु स्वामी रामानन्दाचार्याः अनन्तश्रीसमलंकृतश्रीश्रीरामभद्राचार्यमहाराजाः विजयतेतराम् ।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

●

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

प्रश्नोपनिषदि

श्रीराघवकृपाभाष्यम्

पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-कवितार्किकचूडामणि-वाचस्पति-
जगद्गुरुरामानन्दाचार्य-स्वामि-रामभद्राचार्य-प्रणीतं,
श्रीमज्जगद्गुरु-रामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि-
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तप्रतिपादकश्रीराघवकृपाभाष्यम् ।।

।। श्री राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

अथ प्रश्नोपनिषदि
श्रीराघवकृपाभाष्यम्

मङ्गलाचरणम्

कस्त्वं गौरकुमारपूजितपदः श्यामोऽभिरामोधनु-
र्वाणं तूणमथो वहन्वनभुवं संभूषयन्भ्राम्यसि ।
किं नारायण आगतः सह नरो देवत्रयं ब्रह्म किम्,
रामो मारूतिनेति मंजु विहितः प्रश्नः प्रसन्नोऽवतु ।।१।।

वियत् खेलन् कोऽयं विधुरिति कुतः प्रादुरभवत् ।
पयोधेः किं शुभ्रं जननि नवनीतं नहि नहि ।।
कथं मध्ये श्यामस्तममलद्य मे राघव इति ।
कृत प्रश्नः प्रश्नोपनिषदमलर्थो विजयते ।।२।।

वन्दे वन्दारूवृन्दानां वन्द्यपादपयोरुहम् ।
खेलन्तं काकतोकेन राघवं धूलिधूसरम् ।।३।।

यत् कृपामृततृप्तोऽहं क्षुत्क्षामचरचेतनः ।
रामानन्दं प्रणौम्याद्यं स्वाचार्यं जगतां गुरुम् ।।४।।

तुलसीदास पादाब्जे बुभूषामि मधुव्रतः ।
नीतोऽहं कृपया यस्य श्रीमानसमरालताम् ।।५।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवमुदे मया ।
आचार्यरामभद्रेण प्रश्नोपनिषदि भाष्यते ।।६।।

अथर्ववेदस्य च पिप्पलाद-
शाखीयसुब्राह्मणमध्यगैषा ।
प्रभाति प्रश्नोपनिषद् गंभीरा,
प्रश्नाश्च यस्यां शुचि षड्ऋषीणाम् ।।७।।
श्रुतीनां सारसर्वस्वाँस्तान्व्याख्यातुमुपक्रमे ।
नत्वा प्राभञ्जनिं सन्तः श्रण्वन्तु गतमत्सराः ।।८।।

शान्तिपाठः

तत्र प्रागुपनिषद् व्याख्यानात् भगवद्भजनप्रतिबन्धकप्रत्यूहपरिसमाप्तिचिकीर्षया मांगलिकः सशिष्यर्षिसंघः शान्तिपाठं पठति । अत्र शान्तिपाठे मन्त्रद्वयं प्रथमश्च निजमंगलमनोरथपरः, द्वितीयश्च भगवतः विभूतिचतुष्टयस्मरणपुरस्सरं स्वत्ययनाभ्यर्थनपरः ।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।।
स्वस्ति न इन्द्रो बृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ॐ इति प्रणवं स्मृत्वा तपःप्रशान्तस्वान्ता ऋषयः प्रार्थयन्ते देवान्—देवाः द्योतमानाः परब्रह्म ज्योतिषा, वयं कर्णेभिः कर्णयन्ते श्रूयन्ते शब्दाः यैः तानि कर्णानि तैः कर्णेभिः श्रवणैः, अत्र **बहुलं छन्दसि** इत्यनेन ऐसोऽप्रवृत्या **बहुवचने झल्येत्** इत्यनेनेकारः । भद्रं कल्याणमयं शब्दमेव शृणुयाम, अभद्रशब्दान् निजकर्णगोचरान्मा कुर्यामिति भावः । एवमक्षभिः नेत्रैः अत्रापि बाहुलकादैसेत्वे न । भद्रं कल्याणमयमेव रूपं पश्येम अवलोकयेम, अभद्रं कृतिविकर्मणों भगवद्विमुखस्य रूपं चेत् मा भवत्वस्मद्दृग्विषयः: । के वयं, यजत्राः यजन्ते देवान् पूजयन्ति, देवैः संगच्छन्ते, ददते च सर्वस्वमिति यजत्राः । वयं स्थिरैः चाञ्चल्यरहितैः अङ्गैः करचरणादिभिरवयवैः तनूभिः यद्यप्यङ्गशब्देन बहुवचनान्तेन तनुवाच्यशरीरस्य गतार्थता तथापि सूक्ष्म शरीराभिप्रायेण तनुशब्दस्य पृथगुपादानम् । तथा च तनूभिरिति सूक्ष्माभिः लिङ्गशरीराभिधाभिः स्थिराभिः युक्ताः तुष्टुवांसः परमात्मनः स्तुतवन्तो वयं, यत् यावत् आयुः जीवनावधि तत्सर्वं देवहितं देवाः हिताः येन तत् देवप्रीतिवर्द्धकम् यद्वा देवेभ्यो हितमिति देवहितं तादृशं, व्यशेम व्यस्तं कुर्याम । यद्वा कर्णेभिः भद्रं भवन्रमयतीति भद्रः तं भद्रं रामभद्रं

शृणुयाम तमेव तद्गुणगणावच्छेदेन स्वकर्णातिथिः कुर्याम । रामभद्रो हि भवन् निजभक्तप्रेमपारवश्येन प्रकटो भवन् सर्वान् रमयति तद्यथा श्रीमद्रामायणे–

गन्धर्वराजप्रतिमं लोके विख्यातपौरुषम् ।
दीर्घबाहुं महासत्त्वं मत्तमातङ्गगामिनम् ।।

(वा० रा० २/३/२५)

चन्द्रकान्ताननं राममतीव प्रियदर्शनम् ।
रूपौदार्यगुणैःपुंसां दृष्टिचित्तापहारिणम् ।।

(वा० रा० २/३/२६)

घर्माभितप्तान् पर्जन्यं ह्लादयन्तमिव प्रजाः ।
न ततर्प समायान्तं पश्यमानो नराधिपः ।।

(वा० रा० २/३/२७)

तमेव रामभद्रं यजत्रा: यजमाना: वयं अक्षभिः नेत्रैः पश्येम नान्यं, राघवादन्य-दर्शने हि स्वात्मविगर्हणापत्तेः, यथा च तत्रैव महर्षिवाल्मीकिः—

यश्च रामं न पश्येत् तु यञ्च रामो न पश्यति ।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ।।

(वा० रा० २/१७/१४)

अत्र स्वात्मा स्वशरीरे वर्तमानः अन्तर्यामित्वेन परमात्मा, स एव एतत् समीपस्थमननुभूतभगवत्साक्षात्कारसुखं विगर्हते, त्वया मानवशरीरं लब्ध्वापि श्रीरामदर्शनमकृत्वा अभूत्वा वा भगवत्कृपादृष्टिविषयेण नितरामिन्द्रियाणां हिंसा कृता। एवमादि प्रत्यगात्मानं तर्जयन् निन्दतीति भावः । स्वात्माप्येनमित्यादिना निराकृताः सर्वे **जीवो ब्रह्मैवनापरः** एवमादीनि श्रुतिप्रतीपानि प्रलपन्तः । तथा स्थिरैः अङ्गैः तनूभिः स्थूलसूक्ष्मशरीरैः तुष्टुवांसः श्रीरामभद्रगुणगानेन तत् स्तुतिं कुर्वन्तः, यदायुः जीवनशेषमायुष्यं देवहितं श्री रामकार्यार्थजटायुरिव व्यशेम सन्नियोजयेम। मन्ये चतुर्थ-चरणोऽस्य मन्त्रस्य जटायुरायुष्य समर्पणं स्मारयन् प्रार्थयते ।

अथ भगवतश्चतसृणाम् इन्द्रपूषताक्ष्र्यबृहस्पतीनां स्मरणच्छलेन तान्येव स्वस्त्ययनं याचते। नः इति **बहुवचनस्य वस्नसौ** इत्यनेन अस्मभ्यमित्यस्य आदेशभूतमव्ययम्। चतुर्थी च स्वस्ति योगे **नम स्वस्ती** त्यादिना । एवं नः अस्मभ्यम्, वृद्धश्रवाः वृद्धं

दिग्दिगन्तव्याप्तं श्रवः यशः यस्य तथाभूतःइन्द्रः । ननु कथं इन्द्रो वृद्धश्रवाः अहल्याद्युपाख्याने तस्य दुर्यशोभाजनत्वस्य रामायणादौ प्रसिद्धेरिति चेत् सत्यम् । श्रीरामविवाहे सहस्रनेत्रैः कृतप्राशचित्तत्वात् । तथा च मानसे—

रामहि चितव सुरेश सुजाना ।
गौतम श्राप परम हित माना ।।
देव सकल सुरपतिहिं सिहाहीं ।
आज पुरन्दर सम कोउ नाहीं ।।

(मानस १/३१७/६-७)

केनोपनिषद्यपि इन्द्रेणैवोमातः सर्वप्रथमं ग्रहीतब्रह्मविद्याकत्वात् तथा च श्रुतिः—

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान्देवान्स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श ।
स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ।।

(केनोपनिषद् ४/३)

एवं प्रशस्तयशाः पुरन्दरः नः अस्मभ्यं वेदाध्यायिभ्यः स्वस्ति कल्याणं दधातु धारयतु, तथैव विश्ववेदाः विश्वं सर्वं वेत्ति जानातीति विश्ववेदाः सर्वज्ञः, पूषा पोषणात् सर्वजगतां पुष्णातीति व्युत्पत्तेः पूषा सूर्यः, तृतीयराशिस्थितः, नः स्वस्ति दधातु पुष्णातु, एवं अरिष्टनेमिः अरिष्टानि उपद्रवाणि भगवद्भजनविघ्नाः वा तेषां नाशाय नेमिः चक्रमिव सोऽरिष्टनेमिः, यद्वा अरिष्टानां भगवद्भक्तविघ्नानां विनाशाय नेमिः वाहनत्वाद्धि गरूडः भगवानिव भगवद्भक्तकष्टनिनशयिषया प्रेषयत्येव चक्रं स्वयं च चक्रमिव भवति तथाभूतस्तार्क्ष्यः गरुडदेवः नः स्वस्ति दधातु । एवं वृहस्पतिः देव-गुरूर्ज्ञानदैवतरूपः, नः स्वस्ति दधातु अस्मभ्यं कल्याणमुपस्थपयत्वित्यर्थः ।

अत्रेदमवधेयं यदस्मिन् स्वस्त्ययनमंत्रे इन्द्रपूषतार्क्ष्यवृहस्पतयश्चत्वारो देवविशेषाः स्वस्तये समभ्यर्थिताः एत एव श्रीगीतासु भगवद्विभूतित्वेन परिगणिताः तथा च—

इन्द्रः– देवानामसिम वासवः । गीता–१०/२२
पूषा– ज्योतिषां रविरंशुमान् । गीता– १०/२१
तार्क्ष्यः– वैनतेयश्च पक्षिणाम् । गीता–१०/३०
बृहस्पतिः– पुरोधसाञ्च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् । गीता–१०/२४

एवं भगवद्विभूतिस्मरणेन भगवत्स्मरणं कृतप्रायम्, इमे परमभागवता अपि । इन्द्रो ब्रह्मसाक्षात्कारकर्तृषु प्रथमः केनोपनिषद्प्रसिद्धः । पूशा सूर्योऽपि भगवद्भक्तः

निजमण्डल एव परमात्मानं विराजयति **योऽसावसौ पुरूषः** इत्यादि श्रुतिप्रसिद्धेः श्रीरामावतारस्य च तद्वंश एव भूतत्वाद् । ताक्ष्र्यः गरुडो भगवद्वाहनमेव । बृहस्पतिरपि परमभागवतः श्रीमानसे श्रीरामदर्शनात् भरतं निवारयितुमिच्छन्तं पुरन्दरं प्रतिषेधयन् देवांश्च प्रतिबोधयन् तादृगेव दृष्टः । यथा—

सीतापति सेवक सेवकाई । कामधेनु सय सरिस सुहाई ।।

इत्यलमतिपल्लवितेन ।।श्रीः।।

अथ प्रकृतमनुसरामो रामचन्द्रं भजामः ।

।। अथ प्रथमः प्रश्नः ।।

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्याश्चाश्वलायनो भागवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ।।१।।

ॐ इति भगवत् स्मरणं कृत्वा ब्रह्मविद्याधिकारलक्षणनिदर्शनाय षण्णाम् प्रश्नकर्तृणां ब्रह्मर्षिवर्याणाम् प्रश्नपूर्वपीठिकां प्रास्ताविकतया प्रस्तौति । अथर्ववेदपिप्पलादशाखान्तरित-ब्राह्मणभागीयोऽयं श्रुतिसमूहः षण्णाम् महर्षीणाम् प्रश्नानधितिष्ठन्नास्ते तस्मात् प्रश्नोपनिषदिति व्यवह्रियते । विग्रश्चात्र-प्रश्नानामुपनिषत् प्रश्नपूर्विका वा उपनिषत् प्रश्नोपनिषत् । आख्यापिका सूचिका । प्रथममन्त्रः सुकेशा इत्यादिः । ननु गद्यबहुलत्वादितिहासप्रधानत्वाच्च कथमेष वाक्य समूहः उपनिषदिति ? मैवं वादीः, मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति पारस्करवचनेन ब्राह्मणस्यापि वेदत्वं त्वया कथं विस्मर्यते ।

भारद्वाजः–भारद्वाजस्य ऋषेरपत्यं पुमान् सुकेशा, शिबेः अपत्यं शैब्यः सत्यकामः, गर्गगोत्रः सौर्यायणी, कोसलदेशीयः आश्वलायनः, भृगुवंशीयः वैदर्भिः, कत्यप्रपौत्रः कबन्धी, ते एते षट् संख्याकाः ब्रह्मर्षयः । ब्रह्मणि वेदे पराः तदध्ययननिरताः, एवं न केवलममीषामध्ययनं, ब्रह्मणि ब्रह्मचिन्तने निष्ठा एषां ते ब्रह्मनिष्ठाः परमब्रह्म सकलकार्यकारणातीतमन्वेषमाणा मृगयन्तः कस्तूरिकां मृगा इव । कथञ्चित् पिप्पलादं ज्ञात्वा एषः ह निश्चयेन तत्सर्वमस्माभिः प्रश्नविषीकरिष्यमाणं वक्ष्यति उपदेक्ष्यति इति ते निश्चित्य **समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं गुरुमुपसर्पति** इति श्रुतेः, समित्पाणयः समित्पाणौ येषां ते, भगवन्तं भगानि ऐश्वर्याणि ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यतेजोवीर्याणि सन्त्यस्मिन्

इति भगः, अर्शआदित्वात् मत्वर्थीयोऽच् प्रत्ययः तादृशो भगः भगवान् अस्ति अस्मिन् हृद्देशे स भगवान् भगवद्वानित्यर्थः ।

अथ कथमयं द्रविड़प्राणायामः प्रस्तूयते तथा च भगानि अस्मिन् सन्ति इति भगः भगोस्त्यस्मिन्निति भगवान्, अहो किमनेन मत्वर्थीयप्रत्ययद्वयप्रयासकल्पनागौरवेण ? इति चेच्छृणु–धन्यमिदं गौरवं यत्वादृशान् रौरवात् त्रायते, भगवांस्तु परमात्मैव भवति नह्यणीयान् जीवात्मा, तथा च स्मर्यते श्रीभागवते–

अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगत् विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात् को नाम लोके भगवत्पदार्थः ।।

(श्रीमद्भागवत १/१८/२१)

तात्पर्यमिदं यन्मुकुन्दादतिरिक्तः कोऽपि लोके भगवत्पदार्थो नाध्यवसीयते । को नाम जीवः चरणनखाद्गंगामुत्पादयितुं क्षमः, को नाम प्रत्यगात्मा चरणस्पर्शेन तारयेच्छिलाम्, यः स्वयं भिन्नसेतुः, स कथं कनिष्ठः कनिष्ठिकायां विभ्रियात् गोबर्द्धनम् । भगवत्वं नाम एकसंसर्गावच्छेदेनैककालावच्छेदेनैकाधिकरणतावच्छेदेन सकल विरूद्धधर्माश्रयतावच्छेदकतावत्वं तन्नाल्पसत्वे जीवे । तस्मान् मदुक्तव्युत्पत्तिरेव श्रेयसी ।

अथ शैषिकान्मतुवर्थीयाच्छैषिको मतुवार्थिकः ।
सरूपप्रत्ययोनेष्टः सन्नन्तान्न सनिष्यते ।।

इति पतञ्जलिवचनानुरोधेन युगपदेव अज्मतुप् प्रत्यययोः शास्त्रविरूद्धत्वात् मोघोऽयमारम्भः ? इति चेत् सावधानतया नानुशीलितस्त्वया शाब्दिकसिद्धान्तः । तत्र सरूपप्रत्ययनिषेधः न तु विरूपप्रत्ययस्य । अचो मतुपा सह आनुपूर्व्यां वैरूप्यं सुस्पष्टमेव । एवं पिप्पलादमेतन्नामकं महर्षिं यद्वा **तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्ति** इति श्रुत्या पिप्पलादत्वस्य जीवात्मधर्मत्वेन श्रुतिप्रसिद्धेः । पिप्पलादं पिप्पलमत्तीति पिप्पलादः तं कर्मफलभोक्तारं सन्निहितपरमेश्वरसखं, यद्वा पिप्पलं संसारवृक्षं **एषोऽश्वत्थः सनातनः** इति श्रुतेः । असंगशस्त्रेण संसारपिप्पलनाशकमिति भावः । उपसन्नाः गताः ।।श्रीः।।

अथ ब्रह्मजिज्ञासुरूपेण महर्षिषट्कं समुपागतं विलोक्य, प्रतीक्षाच्छलेन तदुत्कण्ठा विवर्धयिषया वर्षं यावत् निजशरण्यांस्तान् प्रतीक्षितुं ब्रह्मविद्याधिकारं संपादयितुञ्च तान् समादिशत् पिप्पलादः—

तान्ह स ऋषिरुवाच–भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ।।२।।

ह इति निश्चये प्रसिद्धौ च । स ऋषिः पिप्पलादः तान् जिज्ञासून् उवाच– आदिदेश यत् यद्यपि यूयं ब्रह्मविद्याधिकारसम्पन्नास्तथापि संवत्सरमेकवर्षं यावत् भूय एव, एवकारोऽप्यर्थः पुनरपि इति भावः, तपसा चान्द्रायणादिना, ब्रह्मचर्येण अष्टव्यवाय-प्रतिषेधेन, श्रद्धया आस्तिकबुद्ध्या युक्ताः, संवत्स्यथ मदाश्रमे निवासं करिष्यथ । समाप्ते च संवत्सरे यथाकामं यथेच्छं, प्रश्नान् पृच्छथ उपस्थापयिष्यथ । यदि विज्ञास्यामः यतो हि न वयं परमेश्वर इव सर्वज्ञाः समीमज्ञानत्वात् प्रत्यगात्मनाम्, अतो यदीत्युच्यते विज्ञास्यामः अवगमिष्यामः, तत् तदा, वः युष्मभ्यम् सर्वं वक्ष्यामः सकलमुपदेक्ष्यामः ।

अत्र अहंकार शून्यत्वात् वक्ष्यामीत्येकवचनं न प्रयुक्तं, नो चेत् तत्कर्तृत्वेन अहमिति बुद्ध्यारूढ़ो भवेत् ।। श्रीः।।

एवं महर्षिणा समादिष्टास्ते सुकेशसत्यकामसौर्यायण्यश्वलायनवैदर्भिकबन्धिनः समनुष्ठितब्रह्मचर्या अपि गुरुगिरोगौरवेण वर्षं यावत् तपोब्रह्मचर्यश्रद्धा विधाय भूयः समित्पाणयस्तमुपबव्रजुः । अथ विलोक्य प्रश्नसमाधीतसामाचार्यस्य समित्पाणिः कत्यप्रपौत्रः कबन्धी, कबन्धः पूर्वमेव ज्ञानवैराग्यखड्गेन छिन्नमोहशिरस्त्वाद् गलपर्यन्तभाग इव संसारशरीरमस्त्यस्मिन् इति कबन्धी अन्वर्थनामा पृच्छति—

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ।
भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ।।३।।

अथ निर्दिष्टव्रतानुष्ठानानन्तरं कात्यायनः कत्य प्रपौत्रः कबन्धी व्याख्यातनामा, उपेत्य, पिप्पलादमुपगम्य, पप्रच्छ प्रश्नं चकार–भगवनप्रथमप्रश्नानुसारं हे भगवन् ! यद्वा भगवति भगान्यैश्वर्यादीनि नित्यं सामग्र्येण तिष्ठन्ति, महतां हृदि अंशतस्तिष्ठन्ति तानि किन्तु भवन्ति प्रशस्तानि । एवं हि परमात्मविषये भगवान् नित्ययोगमतुपा जीवात्मनि च प्राशस्त्ये । ननु भगानि जीवे प्रशस्तानि भूमत्वेन तिष्ठन्तीत्यत्र किं मानम् ? **मम साधर्म्यमागता** इति स्मृतिरेव मानत्वेन गृह्यताम् । आशयोऽयं यत् भगवत् समानधर्मता जोवेऽप्यागच्छति, तत्राप्यैश्वर्यधर्मयशश्रीज्ञानवैराग्याणि समानधर्मतया स्वांशतः प्राशस्तेन च भूयस्तया तिष्ठन्ति जीवे, परञ्च नित्ययोगेन सामग्र्येण च पूर्णतया तिष्ठन्ति परमात्मन्येवेति विवेकः । अतः कृतभगवत्साक्षात्कारो निर्विकारो महात्मापि भगवानौपचारिकः परमार्थतस्तु भगवाञ्छ्रीराघव एव यद्वा गुरावपि परब्रह्मबुद्ध्या प्राह भगवन्निति । तथा च पठन्ति गुरुगीतायाम्—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तसमे श्री गुरवे नमः ।

तस्मात् हे भगवत्स्वरूप आचार्य ! **आचार्यं मां विजानीयात्** इति स्मृते: । ह वा इति निश्चयार्थौ निपातौ, इमा: दृश्यमाना:, प्रजा: संसारप्रकृतय:, कुत: कस्मात् कारणात् कस्मात् हेतोर्वा, प्रजायन्ते जन्म गृह्णन्ति, इति प्रश्नसमाप्तौ ।

कुतः प्रजा प्रजायन्ते भगवन् ब्रूहि तत्वतः ।
पिप्पलादं हि पप्रच्छ कबन्धी षष्ठ आदरात् ।।श्रीः।।

अथ कबन्धिन: प्रश्नं समाधत्ते—

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।।४।।

अथ स: पिप्पलाद:, तस्मै कृतप्रश्नाय कबन्धिने, ह निश्चयं कृत्वा, उवाच अकथयत्–वै प्रसिद्धमेतत् प्रजाकाम: प्रजापति: प्रजां रिरचयिषुर्ब्रह्मा, तप: अतप्यत तपसा श्रुतयर्थमालोचितवान् एवं स ब्रह्मा तप: तपत्वा उग्रतपसा अघमर्षणसूक्तानुसारं प्राक्तनकल्पकृतां सृष्टिं ज्ञात्वा, स ब्रह्मा मिथुनं युग्ममुत्पादयते । अत्र लङर्थे लट् उदपादयत् इति भाव: । किन्नामकं मिथुनमित्यत् आह—रयिं च प्राणं च, शब्दाविमौ विविधविद्वद्व्युत्प्रतिपत्तिपदत्वेन जृंभ्येते केचन, इमावेव मायामहेश्वराविति कथयन्ति, केचन पार्वतीपरमेश्वराविति व्याहरन्ति, केचन प्रकृतिपुरुषाविति मीमांसन्ते, केचन अग्निसोमाविति निर्णयन्ति, किन्तु वयं तु श्रौता: रयिं पृथिव्यन्तरूपां पोषणशक्तिं **रयि ऐश्वर्ये** इति धात्वर्थलभ्याम्, प्राणं प्राणन्ति जीवन्ति जना: येन इति प्राण: इति व्युत्पत्ते: प्राणपदेन संजीवनीशक्तिं सूर्यचन्द्रापरपर्याये नि:सङ्कोचमङ्गीकुर्म: । प्राणतत्वसाकारविग्रह: सूर्य: रयितत्वसाकारविग्रहश्च चन्द्र:, मूलं च **सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत्** इति श्रुति: । अथ जगज्जीवनकारणत्वे सूर्यस्य कि मानम्, यं प्राणपर्यायं मन्यसे, का वा विनिगमना चन्द्रमस: पोषकत्वे यमिह रयिमित्यंगीकरोषि ? इति चेच्छृणु–प्रतिभा धनिनो वयं नहि प्रमाणमन्तरेण सिद्धान्तान् निश्चिन्म:—

सूर्य पक्षे– सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च इति ।

चन्द्र पक्षे– चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि रयिं प्रसङ्गम् बहुलमित्यादि ।

तथा चाह अस्मत् समभ्यर्चनीयचरणकमलो विमलमानसो मानसकार:—

भगति सुतिय कल करन विभूषन ।
जग हित हेतु बिमल बिधु पूषन ।।

मानस १/१९/६

इमावेव रयिप्राणौ मन्ये गीतायाम् भिन्नपरप्रकृतित्वेन व्याजहार भगवान् कृष्णः। तथाहि रयिरेव अष्टधा भिन्ना प्रकृतिरपरा यथा च–

भूमिरापोऽनलोवायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

(गीता ७/४)

प्राणस्तत्र परा प्रकृतिः संजीवनीत्वेन कीर्तितः जीवमूतामिति कथयता भगवता तद्यथा—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतं महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।। इति

एवं भूतं रयिं सोमरूपामन्नमयत्वात् प्राणं च तेजःस्वरूपमेतौ मिथुनीभूय मे मम ब्रह्मणः, प्रजां बहुधा बहुप्रकाराम्, करिष्यतः उत्पादयिष्यतः, इति इत्थम् उत्पत्तिप्रकार दर्शनार्थम् । इमावेव रयिप्राणौ पुराणेषु मनुशतरूपे इति गीयेते । तदा मिथुनधर्मेण प्रजाह्येधांबभूविरे इति स्मरणात्–

स्वायंभू अरु मनु सतरूपा । जिन से भइ नरसृष्टि अनूपा ।।

(मानस १/१४२/१) ।।श्रीः।।

अधुना द्वावेव रयिप्राणौ प्रकारान्तरेण वर्णयति । यद्यपि प्राणः संजीवनशक्तिः रयिश्च पोषणशक्तिः, किन्तु लोके किं रूपाविमौ, प्राणः केन रूपेण जीवयति रयिश्च कया कृत्या पुष्णातीत्येतदाह सूर्यचन्द्राकारवर्णनेन । अथ भोः ! पूर्वस्मिन् मन्त्रे **स मिथुनमुत्पादयते रयिं च प्राणं च** इत्युक्तम् । मिथुनं नाम नरनारीयुग्मं तर्ह्यत्र पुरुषयुग्मेन मिथुनमिदं कथं विव्रियते । इति चेच्छृणु—मिथुनशब्देन न केवलं दम्पत्योर्युग्मं विवक्षितम् अपि तु एकस्मिन् कार्ये सहभागिनोर्द्वयोर्युग्मं तत् भ्रात्रोरपि भवितुं शक्नोति यथा– **यशोदा च महाभागा मिथुनं समजायत ।**

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ।।५।।

यः प्राणत्वेन पुरा कीर्तितः स एव ह वै प्रसिद्धः आदित्यः सूर्यः एव रयिः, चन्द्रमा शशी एव मूर्तमाकारयुक्तं पृथ्वी, जलमग्निः इदं त्रिभूतमपि रयिः तथा अमूर्तमाकाररहितं वाय्वाकाशमपि रयिः तस्मात् रयेरेव पंचभूतात्मकत्वात् मूर्तिः आकार-वती पृथ्वी एव रयिः ।।श्रीः।।

अथ समष्टिप्राणशक्तिमयस्यादित्यस्य प्राणव्यष्टिप्राणसन्निधानप्रक्रियां वर्णयति—

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते । यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो तत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ।।६।।

अथ मिथुननिर्मितेः पश्चात् प्राणशक्तिसाकारविग्रह आदित्यः उदयन् प्रातरुद्गच्छन् यत् प्राचीं पूर्वां दिशं प्रविशति तेन प्रवेशेन सर्वान् प्राच्यान् प्राग्भवानपि प्राणान् रश्मिषु किरणेषु, संनिधत्ते सन्निधाय संजीवयतीति भावः । एवं यद्दक्षिणां यच्च उदीचीमुत्तरां, यच्च प्रतीचीं पश्चिमाम्, यच्चाधः नीचैः, यच्चोर्ध्वम् उपरि, यच्च दिशः अन्तरा कोणेषु यत्सर्वं भुवनमण्डलं प्रविशति तेन सर्वानपि प्राणान् समूह्य रश्मिषु संनिधत्ते संजीवयतीति शेषः ।।श्रीः।।

पुनस्तेन प्राणैकरूप्यं निर्दिशति—

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते । तदेतदृचाभ्युक्तम् ।।७।।

सैव ख्यातमहिमा वैश्वानरः उदराग्निरूपः जाठर इत्यर्थः, यद्वा वैश्वानरः तैजसः विश्वरूपः सर्वरूपः अग्निः पावकमयः, उदयते प्रकाशते, व्यत्ययादात्मनेपदम्, ऋचा मंत्रेणापि तदेतत् ईदृगेव, अभ्युक्तम् निगदितम् ।। श्रीः।।

ऋगुक्तमेवानुवदति विश्वरूपमिव्यादिना—

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्येतिरेकं तपन्तम् ।
सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणाः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ।।८।।

अत्र पूर्वार्द्धे सप्तापि पदानि द्वितीयान्तानि इति प्राञ्चः । तत्र **दृष्ट्वा ऋषयो वदन्ति** इति द्वितीयान्तानामनुपपत्त्या पदत्रयमध्याजिहीर्षन्ति । एवं विश्वरूपं सर्वस्वरूपं, हरिणं हरीन् अश्वान् नयति निज रथे युनक्तीति हरिणः यद्वा हरिं भगवन्तं नारायणं नयति स्वकीयमण्डलं प्रापयतीति हरिणः—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः ।।

इति स्मृतत्वात् । यद्वा हरीन् हरित वर्णानश्वान् नयति इति हरिणः, यद्वा हरिं सीतासमन्वितं रामं, पीतवर्णया सीतया समन्वितोऽयं श्रीरामशरीरनीलिमा हरितोऽभूत्

तन्मयत्वाच्छ्रीरामोऽपि हरितवर्णः ततो हरिः हरितवर्णं तापहरं महाविष्णुं श्रीरामं नयति मध्येमण्डलं स्थापयति इतिहरिणः **सूर्य मण्डल मध्यस्थं रामं सीता समन्वितम्** इति स्मृतेः । तं हरिणम्, यत्तु हरिणं रश्मिवन्तमिति प्राचीनैरुक्तं तत्तु चिन्त्यम् । कुत्रापि कोशेषु हरि शब्दस्य रश्मिरूपार्थानुपलब्धेः । जातवेदसं विज्ञानमयं, परापणं जीवानां शरण्यम्, ज्योतिः प्रकाशरूपमेकं निरुपमं तपन्तं प्रकाशमानं विलोक्य वदन्ति । किं वदन्ति इत्यत आह–सहस्रेति, इदं प्राचामनुरोधेन वस्तुतस्तु भंगः कल्पना गौरवञ्चेति दोषत्रयं विभाव्य वयमिह पूर्वार्धे **व्यत्ययो बहुलमिति** पाणिनीयसूत्रेण सप्तस्वपि पदेषु प्रथमाविभक्तौ द्वितीयाव्यत्ययं मन्यामहे । एवं विश्वरूपो हरिणो जातवेदाः परायणो ज्योतिः एकः तपन् इत्यर्थः तादृशः सहस्ररश्मिः अनेककिरणः, शतधा अनेकप्राणरूपेण व्यष्टिविधया वर्तमानः, प्रजानाम जन्तूनां, प्राणः संजीवनीभूतः, एष पुरोदृश्यमानः, सूर्यः भाष्करो भगवान् उदयति उदेति ।। श्रीः ।।

अधुना इममेव मिथुनविशेषं व्यापकतया वर्णयति । यत्र यत्र प्रजननं तत्र तत्र तत्तद्रूपेण रयिः प्राणश्चेति मिथुनं तिष्ठति । तत्र रयिं पूजयन् पुनरावर्तते प्रवृत्तिमार्गी निवृत्तिमार्गी च प्राणं पूजयन्नपुनरावर्तते–

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च । तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते । त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेव ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते । एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ।।९।।

वै निश्चयेन, संवत्सरः वर्षमेव प्रजापतिः कालिकसम्बन्धेन प्रजाजनकत्वात्, तस्य प्रजापतिरूपस्य संवत्सरस्य दक्षिणमुत्तरं च अयने मार्गे भवतः, मकरमारभ्य यावन्मिथुनराशिं सूर्य उत्तरतः समुदेति तदेवोत्तरायणं प्राणः देवयानमिति कथ्यते, कर्कमारभ्य यावद्धनु सूर्यो दक्षिणतः उदेति तद्दक्षिणायनं रयिः पितृयाणामिति कथ्यते । के पुनरावर्तन्ते इत्यताह–तत् तस्मात्, ये कर्मिणः निश्चित्य, कृतं कार्यरूपं, इष्टापूर्ते दानादिवापीनिर्माणादि, उपासते । ते चान्द्रमसं चन्द्रमा सम्बन्धिनं, लोकमभिजयन्ते जित्वा सधिकारं यान्ति । त एव साधकाः क्षीणे पुण्ये तस्मात् लोकात् पुनरावर्तन्ते पुनरावागमनं प्राप्नुवन्ति । अतो हेतोः ते प्रजाकामा ऋषयः लोकसंग्रहार्थं दक्षिणं कर्ममार्गं प्रतिपद्यन्ते । कथं ? यतो हि ते प्रजाकामाः संततीप्सवः । यतो हि एषः रयिः चन्द्रमोरूपः पितृयाणः । श्रीः ।

ततो विपरीतं निवृत्तिमार्गं विशिनष्टि अथेत्यादिना–

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विधयाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यममिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतममयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ।।१०।।

अथ एतस्माद्विपरीतमुत्तरेण देवयानेन गच्छन्ति निवृत्तिवादिनः। तेषां मार्गे कानि पाथेयानि इत्यत आह–तृतीयान्तानि चत्वारि तपसा इन्द्रियदमेन, ब्रह्मचर्येण शास्त्रविरूद्ध-व्यवायवर्जनेन, श्रद्धया आस्तिकबुद्ध्या, विद्यया अध्यात्मविद्यया एभिश्चतुर्भिरप्यन्तःकरणनिहितमन्वेषणेन लब्ध्वा आदित्यम् आदितयस्य लोकः आदित्यः **दित्यदित्यादित्यपत्पुत्तरपदाण्यः** इति पाणिनीयसूत्रेणं आदित्यशब्दात् व्यप्रत्यये भत्वादकारलोपे **हलो यमांयमि लोपः** इति यकार लोपे आदित्यं तल्लोकं अभिजयन्ते।

यतो हि एतत् वै निश्चयेन, प्राणानां व्यष्टिगतानाम् आयतनं निवासस्थानम् समष्टिरूपत्वात् इदममृतं मरणरहितम्, अभयं भयशून्यमेतदेवपरायण मुमुक्षूणामिति शेषः। एतस्मात् न पुनरावर्तन्ते नैवावागमनं प्राप्नुवन्ति, इति एष निरोधः सर्वकर्मोपरमः,तदेष श्लोकः स्पष्टीकरणाय मन्त्रविशेषः ।।श्रीः।।

इदानीं कालात्मनः संवत्सरस्य आकारविशेषं कल्पयन्ती श्रुतिः प्राह मन्त्रद्वयमाध्यमेन––

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ।।११।।

अथ प्रजापतेः संवत्सरस्य आकारं कल्पयन्तः इमे परे प्रसिद्धाः कालविदः पितरः, जगज्जनकम् संवत्सरं पञ्चपादं पञ्च हेमन्तवसन्तग्रीष्मवर्षाशरदृतवः अत्र हेमन्तशिशिरयोरेकीकरणात् पञ्चत्वम्। एवं द्वादशमासाः आकृतयः अवयवाःयस्य स द्वादशाकृतिः तम्, एवमेव दिवः स्वर्गलोकस्य, परे अर्धे श्रेष्ठे स्थाने ब्रह्मलोके स्थितं, पुरीषिणम् जलयुक्तं, वस्तुतस्तु पुरीषं मलमासः यत् प्रतित्रिंशमासमेकमासात्मकः संक्रान्तिशून्य आगच्छति तत् पुरीषं तद्वन्तम् पुरीषिणम् , आहुः कथयन्ति, किन्तु अन्ये एभ्यः परे इमं विचक्षणं सर्वज्ञं कथयन्ति। अथ चास्मिन् सप्त चक्रे सप्तसूर्याश्वचक्रयुक्ते, षडरे षट्संख्याकर्तुरूपारे, कालात्मनि जगत् अर्पितं निहितमाहुः ।।श्रीः।।

पुनः प्रजपतिं मासरूपं व्यनक्ति––

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्षः एवं रविः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ।।१२।।

वै निश्चयेन, मासः त्रिशंद्दिनात्मकः प्रजापतिः प्रजननः तस्य प्रजापतेः कृष्णपक्ष एव रयिः पोषणशक्तिः, शुक्लः शुक्लपक्षएव, प्राणः तस्मात् अतो हेतोः एते विषयः शुक्ले शुक्लपक्षेऽपि इष्टं कुर्वन्ति, कथमिव यथा इतरे प्रवृत्तिवादिनः इतरस्मिन्

कृष्णपक्षे आवागमनाय कुर्वन्ति, यद्वा निवृत्तिवादिनः शुक्ले प्रवृत्तिवादिनश्च कृष्णे कुर्वन्ति ।।श्रीः।।

पुनरहोरात्ररूपेण प्रजापतिकल्पनं करोति—

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ।।१३।।

अहोरात्रः दिनरात्रिसमूह एव प्रजापतिः व्यवहारजनकः तस्य अहः दिनमेव प्राणः, रात्रिरेव निशैव रयिः पोषणशक्तिः, एते स्मरान्धाः प्राणानेव प्रस्कन्दन्ति स्खलयन्ति, ये दिवा दिने, रत्या रतिक्रीडया संयुज्यन्ते । तत् ब्रह्मचर्यमेव यत् रात्र्यां निशि, रत्या रतिकर्मणा, संयुज्यन्ते युक्ताः भवन्ति । अत्र प्रसंगतया दिने स्त्रीसहवासनिषेधः ।।श्रीः।।

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ।।१४।।

वै निश्चयेन, अन्नं भोजनमेव प्रजापतिः ततः तस्मात् भक्षितादेव, रेतः पितरि शुक्रं मातरि रजः तस्मात् मिथुनात् इमाः प्रजाः प्रजायन्ते जन्म गृह्णन्ति, इति शब्दः उत्तरसमाप्ति सूचकः ।।श्रीः।।

आधुनोत्तरम् विशमयन्नाह—

तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ।।१५।।

तत् तस्माद् हेतो, ये जनाः, ह वै निश्चयेन तत् प्रजापतिव्रतं प्रजननधर्मं, चरन्ति सेवन्ते गृहमेधिनः ते मिथुनं मिथुनकर्मणा, उत्पादयन्ते जनयन्ति प्रजा इति शेषः । किन्तु ते कूटधर्मतया पितृलोकं प्राप्नुवन्ति । येषां तपः चान्द्रायणादिकं ब्रह्मचर्यं व्यवायशास्त्रीयता, येषु सत्यं सत्यस्वरूपं ब्रह्म प्रतिष्ठितम् हृद्देशे विराजते, तेषामेव जनानाम् एषः अयं ब्रह्मलोकः यत्र छायातपयोरिव जीवात्म परमात्मनोः अनुगाम्यनुगम्यभावः सुस्पष्टं दृश्यते ।।श्रीः।।

पुनः ब्रह्मलोकप्राप्तियोग्यतां वर्णयति—

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ।।१६।।

एषु जिह्मं कपटम्, अनृतम् असत्यभाषणं, माया दम्भः इति इमे विकाराः नहि तेषां निरस्तजिह्मानृतमायानां कृते असौ, विरजः विगतं रजः भगवद्दर्शनप्रतिबन्धकं यस्मात् तथाभूतः, ब्रह्मलोकः ब्रह्म श्रीरामाभिधं तस्य लोकः साकेतः, इति शब्दः प्रकरणसमाप्तिसूचकः ।

।। इति प्रथमः प्रश्नः ।।

।। श्री राघव शन्तनोतु ।।

।। अथ द्वितीयः प्रश्नः ।।

प्रथमप्रश्ने प्राणस्य सूर्यमासदिवसरूपेण चर्चां विधाय सर्वत उत्कर्षः सूचितः। अथ तस्यैव सर्ववरिष्ठत्वं सूचयितुं द्वितीयप्रश्नप्रारम्भः, तत्र भार्गवो वैदर्भिः पिप्पलादं पृच्छति–

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन्कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ।।१।।

अथ अनन्तरं कात्यायने विरते, ह निश्चित्य, एनं पिप्पलादं भार्गवः वैदर्भिः एतन्नामकः ऋषिः पप्रच्छ त्रीन् प्रश्नान् इतिशेषः। भगवन् महानुभाव ! एतां भानवीं प्रजां, कति **कियन्तः**, देवाः विधारयन्ते विभ्रति, एतत् कतरे देवाः प्रकाशयन्ते भासयन्ते, **एषां कतरः** कः वरिष्ठः श्रेष्ठः ? **बाहुलकात् बहुवचनेऽपि उतरप्रत्ययः** ।।

प्रश्नत्रयमाकर्ण्य पिप्पलाद उत्तरयितुमुपक्रमते तस्मै इति–

तस्मै सचाहोवाचआकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामः ।।२।।

तस्मै वैदर्भये, सः पिप्पलादः, उवाच उत्तरयामास—ह वा निश्चयेन एष देवः आकाशः तदभिमानिदैवतं वायुः अग्निः आपः पृथिवी इमानि चञ्चभूतानि, वाक् तदुपलक्षितकर्मेन्द्रियाणि, मनः उपलक्षणेन चतुरन्तःकरणं, चक्षुः श्रोत्रं ज्ञानेन्द्रियाणि, इमे ऊनविशतिर्देवाः, प्रकाश्य अभिवदन्ति स्पर्धया ब्रुवते यद् वयमेतद्बाणं, केचन बाणशब्देन शरीरं लक्षयन्ति किन्तु वयं **प्रणवं धनुः शरोस्यात्मा** इति श्रुतेः बाणशब्दस्य प्रत्यगात्मवाचकत्वाद् बहुव्रीहिमहिम्ना शरीरं बोधयामः। तथा च एषः बाणः अस्ति अस्मिन् इत्येतत् बाणमवष्टभ्य विधारयामः दध्मः इति। ।।श्रीः।।

अथ प्राणस्य वरिष्ठतां संकेतयति–

तान्वरिष्ठः प्राण उवाच। मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवुः ।।३।।

तान् देवान् साभिमानान् वरिष्ठः सर्वेभ्य इति शेषः। प्राणः उवाच—भोदेवाः ! मोहमज्ञानं मा आपद्यथ मा गमत, अहं जगज्जीवनरूपः एतद् बाणं शरीरमवष्टभ्य विधारयामि दधामि, तथापि ते देवाः न श्रद्दधाना बभूवुः न श्रद्दधिरे नास्तिक-बुद्धित्वात् ।। श्रीः।।

अथ प्राणोऽपि तान् विमदयितुं प्रारभत्—

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव तस्मिन्ननुत्क्रामत्यथेतरे सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मि्ँश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते । तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मि्ँश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ।।४।।

सः प्राणः अभिमानाद् देवतानामभिमानं निरीक्ष्य, अत्र **ल्यब्लोपेकर्मणिपंचमी** ऊर्ध्वम् उत्क्रामति इव उत्क्रान्तवानिव अत्र **लङर्थे लट्**। तस्मिन् प्राणे उत्क्रामति इतरे देवा उत्क्रामन्ते । तस्मिन् प्रतिष्ठिमाने चलति इतरे प्रातिष्ठन्ते अचलन् । उदाहरणेन स्पष्टयति—यथा मक्षिकाः भ्रमराः मधुकराणां राजानं नृपम् उत्क्रामन्तं गच्छन्तं सर्वा एव उत्क्रामन्त उथिताः, तस्मिन् प्रतिष्ठमाने प्रस्थानं कुर्वति सर्वा एव प्रातिष्ठन्त गताः एवमत्रापि । अथ वाङ्मनःवचक्षुश्श्रोत्रं दशेन्द्रियाणि चतुरन्तःकरणानि पञ्चभूतानि तद् देवाः प्रीताः प्रसन्नाः प्राणं स्तुन्वन्ति प्राणस्तुतिं कुर्वते ।। श्रीः ।।

अथ यावत्प्रश्नान्तं स्तुतिं वर्णयति, प्राणस्य —

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः ।
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ।।५।।

एषः प्राण एव अग्निः सूर्यः सन् तपति विज्वलति, एषः मघवानिन्द्रः एषः पर्जन्यः वर्षणशीलमेघः, एष वायुः समीरणः च यत् सदसत्, अत्रलुप्तषष्ठीकमेवं तयोः अनित्यनित्ययोः परीभूतं यदमृतं ब्रह्मतत्वं विशिष्टाद्वैतं तदप्येषोऽस्ति ।। श्रीः।।

अधुना सर्वव्यापकतां साधयति—

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजू्ँषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ।।६।।

रथनाभौ स्यन्दने अरा इव प्राणे ऋचः ऋग्वेदः, यजूंषि यजुर्वेदः, सामानि सामवेदः, यज्ञः मखः क्षत्रं ब्रह्म उपलक्षणतया चातुर्वण्यं सर्वं प्राणिजातं, प्राणे सञ्जीवनीशक्तौ प्रतिष्ठितम् विद्यमानम् ।। श्रीः।।

अधुना प्राणैश्वर्यं प्रतिपादयति–

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ।।७।।

हे प्राण ! त्वं प्रजापतिः सन् गर्भे मातुरिति शेषः चरसि भ्राम्यसि, त्वं भवानेव प्रतिजायसे मातृपितृरूपेण बालकः सन् प्रादुर्भवसि । हे प्राण ! इमाः सर्वाः प्रजाः तुभ्यं भवते एव बलिं सेवां हरन्ति अर्पयन्ति । यः त्वं प्राणैः अपानादिभिः सह प्रतितिष्ठसि विराजसे ।। श्रीः।।

इदानीं श्रैष्ठ्यं प्राणस्य विवेचयति—

देवानामसि बह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा ।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ।।८।।

हे प्राण ! त्वं देवानां सुराणां बह्नितमः श्रेष्ठोऽग्निरसि, पितृणामर्यममुख्यानां प्रथमा स्वधा नान्दीमुखश्राद्धे शिशु जन्मनि दीयमाना इति भावः । ऋषीणां महर्षीणां चरितं सत्यमाकूतिरसि । एवमङ्गिरसां तद्वंश्यानांमथर्वा असि, **प्राणोऽथर्वा** इति श्रुतेः ।। श्रीः।।

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रूद्रोऽसि परिरक्षिता ।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ।।९।।

हे प्राण । त्वं तेजसा इन्द्रः पुरन्दरः असि त्वमेव अन्तरिक्षे नभसि चरसि, ज्योतिषां नक्षत्राणां पतिः स्वामी सूर्यः सविता त्वमेवासि ।। श्रीः।।

पुनस्तद्वर्षणसुखं वर्णयति—

यदा त्वमभिवर्षस्येमाः प्राण ते प्रजाः ।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ।।१०।।

हे प्राण ! यदा यस्मिन् काले त्वं मेघरूपेण अभिवर्षसि, अथ इमाः प्रजाः प्राणते श्वसन्ति, अथवा प्राण इति पृथक् पदं सम्बोधनान्तं, ते तव प्रजाः अन्नमदनीयं कामं यथेच्छं भविष्यति सम्पत्स्यते, इति इत्थं विचार्य आनन्दरूपाः सुखिन्यः तिष्ठन्ति निवसन्ति ।। श्रीः ।।

व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातारिश्वनः ।।११।।

हे प्राण ! त्वं व्रात्यः प्रथमजत्वादकृतसंस्कारः तथापि एकर्षिः एकं परमात्मानं ऋषति गच्छति तथा भूतः, यद्वा अद्वितीयमन्त्रद्रष्टा, विश्वस्य चराचरस्य अत्ता भक्षकः अत्ताचराचरग्रहणात् इति सूत्रं, सत्पतिः सतां स्वामी, वयं तव सेवकाः, आद्यस्य भक्षणीयस्य भोजनस्य दातारः, त्वं मातरिश्वनः वायोरपि पिता जनकः । श्रीः ।

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि ।
या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ।।१२।।

हे प्राण ! ते तव या तनुः मूर्तिः वाचि वाण्यां प्रतितिष्ठिता, या श्रोत्रे कर्णे, या चक्षुषि नेत्रे, या च मनसि सन्तता तां चतुर्दशकरणेषु स्थितां शिवां कल्याणमयीं कुरु, मोत्क्रमीः उत्क्रमणं मा कुरु ॥ श्रीः॥

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् ।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि नः ।।१३।।

त्रिदिवे स्वर्गे यत्प्रतिष्ठितम् वस्तु जातमिदं सर्वं प्राणस्य तव वशे नियंत्रणे, हे स्व अस्माकमातमीयपुत्रान्नः माता इव जननी इव रक्ष पालय, च श्रीं 'बहुलकादियङ्भावः' लक्ष्मीं भगवद्भक्तिरूपां प्रज्ञां बुद्धिं नः अस्मभ्यम् विधेहि अनुतिष्ठति ।।श्रीः।।

।। इति द्वितीयः प्रश्नः ।।
।। श्री राघवे शन्तनोतु ।।

।। अथ तृतीयः प्रश्नः ।।

द्वितीय प्रश्ने प्राणस्तुतिव्याजेन् तस्य सर्वातिशायित्वं साधितं भूयस्तत्कारणजिज्ञासार्थं तृतीयप्रश्नप्रारम्भः—

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ—भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ।।१।।

अथ कौसल्यः कौसलदेशीयः आश्वलायनः एवं पिप्पलादं षट्प्रश्नान् पप्रच्छ– भगवन् देव ! एष प्राणः कुतः कारणात् जायते, एष कथं केन प्रकारेण अस्मिन् शरीरे आयाति आगच्छति, आत्मानं स्वं प्रविभज्य प्रविभक्तं कृत्वा कथं प्रातिष्ठते शरीरावयवेषु विराजते, केन मार्गविशेषेण उत्क्रमते, कथं बाह्यं बहिर्व्यवहारं कथं चाध्यात्ममान्तरमभिधत्ते चेतयते ।।श्रीः।।

एवम्—

कुतः प्रजायते प्राणःकेनायाति कथं स्वकम् ।
प्रातिष्ठते विभज्याथ केनोत्क्रमत ईश्वरः ।।

बाह्यमध्यात्ममेवाथ अभिधत्ते कथं हि सः
इमे षड विहिताः प्रश्ना आश्वलायन सूरिण

अथ प्रश्नान्निशम्य पिप्पलाद आश्वलायनं प्रसंशति—

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान्पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ।।२।।

तस्मै आश्वलायनाय सः पिप्पलाद उवाच—अति प्रश्नान् अतिशयाः प्रश्नाः अतिप्रश्नाः तान् पृच्छसि, स्वयमेव प्राणो दुर्ज्ञेयः त्वमिह तत्कारणं जिज्ञाससे तस्माद् अहं ते तुभ्यंम् ब्रवीमि कथयामि ।।श्रीः।।

अथ प्राणजन्माह—

आत्मन एष प्राणो जायते । यथैषा पुरूषे च्छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृते नायात्यस्मिञ्शरीरे ।।३।।

अथोत्तरयति पिप्पलादः—एष प्राणः आत्मनः सर्वकारणभूतात् प्रत्यगात्मासकाशात् जायते प्रभवति, यथा छायापुरूषस्य सकाशाद् जायते तथैव प्रतिबिम्बभूतोऽयमिति फलितार्थः । एवमस्मिन् पुरूष एव सर्वमाततं, वस्तुतस्तु आत्मपदं परमात्मपरकमिति बहुशो मया व्याख्यातम्, तस्मात् जायमानं जीवात्मानमनुगच्छन् पुरूषं छायेव मनोकृतेन संकल्पेन अस्मिन् शरीरे आयाति । मरणकाले जीवात्मा यथा संकल्पयति तदात्मकेन मनसा नीयमानोऽयं तत्संकल्पनिर्मितशरीरे इति भावः । यदि मरणसमये विषयांश्चिन्तयति तदा सूकरकूकरादिनिकृष्टशरीराणि प्राप्नोति, यदा भगवन्तं भजते तदा दिव्यशरीरेण प्रभुपदपद्मपरागरागरसमनुभवतीति भावः । तस्मान् मरणकाले भगवानेव स्मरणीय इति विधीयते ।।श्रीः।।

इत्थं प्रश्नद्वयं समाधाय तृतीयप्रश्नं सम्राडुदाहरणेन समाधत्ते—

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठ-स्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक्पृथगेव संनिधत्ते ।।४।।

यथा कश्चन सम्राट् अधिकृतान् प्रेष्यान्, एतान् ग्रामान् इमान् ग्रामान् वीप्सार्थे द्विवचनम् अधितिष्ठस्व साधिकारं तिष्ठस्व, तथैव अयं सम्राडिव इतरान् प्राणान् स्वाधीनान् चक्षुरादीन् संनिधत्ते सन्निहतान् कुरूते । श्रीः ।

अथ संनिधानप्रकारमाह—

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः । एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ।।५।।

पायुश्च उपस्थश्च इति पायूपस्थं प्राण्यङ्गत्वात् द्वन्द्वे क्लीबत्वमेकवचनं च, एवं तस्मिन् पायूपस्थे गुदशिश्ने, अपानमपकृष्टं नयति शरीरमलं यत्तथाभूतं, चक्षुश्च श्रोत्रञ्च इति चक्षुःश्रोत्रं तस्मिन् चक्षुःश्रोत्रे । प्राणः मुखनासिकाभ्यां निर्गच्छन् स्वयं प्रातिष्ठते अधिकृत्य विराजते, मुखञ्च नासिकाचेति मुखनासिके ताभ्यां मुखनासिकाभ्याम् । ननु कथ मत्र **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य सेनाङ्गानाम्** इत्यनेन नैकवद्भावः ? **मुखनासिका वचनोऽनुनासिकः** इति सूत्रनिर्देशेन एकवद्भावविधेरनित्यत्त्वज्ञापनात्, तथाहि यदि चेत् प्राण्यङ्गत्वात् मुखनासिकेत्यत्र क्लीबत्वमेकत्वभावश्च स्याताम् तदा मुखं च नासिका च मुखनासिकं तेन वचन इति मुखनासिकवचनः इत्येव सूत्रितं स्यात्, यद्यपि केचन मुखनासिकेन आवचनः इत्याकारं प्रश्लिष्य व्युत्पाद्य मुखसहितनासिकयोरुच्चार्यमाणः इति वृत्तिमप्यवर्णयन्, तथापि आकारप्रश्लेषकल्पना- गौरवं मुखनासिकाशब्दस्य आकृतिगणतया शाकपार्थिवादिगणपाठकल्पना च । इत्थं कल्पनाद्वयगौरवापेक्षया मदुक्तज्ञापनमेव लघीयस्तम् । मुखनासिकाभ्यामिति श्रुतिप्रयोगानुरोधोऽपि प्रमाणम् । व्याकरणस्य श्रुतेरङ्गत्वाद् व्याकरणं श्रुतिमनुगच्छति न तु श्रुतिर्व्याकरणम् । ध्यातव्यमत्र पायूपस्थे, चक्षुःश्रोत्रे इत्युभयत्रैकवद्भावं विधाय मुखनासिकाभ्यामिति नकृत्वैकवद्भावं श्रुतिरस्य शास्त्रस्याऽनित्यत्वे परमं प्रमाणम् । एवं तु मध्ये शरीरस्य हृद्देशे समानः एषः समानवायुः शरीररूपे यज्ञे हुतं निक्षिप्तमन्नं समं समानरूपेण नयति श्रुगिव, तस्मात् जाठराग्नेः सप्तार्चिषः सप्तज्वालाः भवन्ति ।।श्रीः।।

अथ व्यानचरणं वर्णयति—

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ।।६।।

हृद्देशे एष आत्मा जीवात्मा परमात्मनः सह तिष्ठति । तत्र एतत् प्रसिद्धं नाडीनामेकाधिकशतं मुख्यं, तत्र प्रतिनाडिशतं शतसंख्याकं तत्रापि एकैकस्या द्वासप्ततिः द्विगुणितषट्त्रिंशत्, तत्रापि प्रत्येकं सहस्रं सहस्रमासुनाडीसु व्यानयति रूधिरप्रवाहं यः सः व्यानः, चरति गच्छति ।। श्रीः।।

अथोदानकार्यं वर्णयति–

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ।।७।।

अथ अनन्तरम्, एकया सुषुम्नया, ऊर्ध्वया ऊर्ध्वगामिन्या, नाड्या गच्छन्नुदानः, पुण्येन हेतुना जीवं पुण्यलोकं स्वर्गादिकं, पापेन अघेन पापलोकं नरकम्, उभाभ्यां

पुण्यपापाभ्यां मिश्रिताभ्यां, जीवं मनुष्यलोकं नरलोकं, नयति गमयति। तस्मात् उदान इति ऊर्ध्वं नयति इति व्युत्पत्तिः ।श्रीः।

अधुना पञ्चमं प्रश्नं समाधत्ते—

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः । पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ।।८।।

बाह्यप्राणेनान्तःप्राणानां रक्षा भवति तस्मात् आन्तराणां पंचप्राणानां पंच महाभूतान्येव बाह्यप्राणत्वेन श्रुत्या व्याख्यातानि, तथाहि–आदित्यः सूर्यः आग्नेयः बाह्यः प्राणः शरीराद्बहिः वर्तमानः चाक्षुषं नेत्र संबंधिनं प्राणमनुग्रहाणः कृपापात्रं कुर्वन् उदयति, एवं पृथिव्यां तदभिमानिनी देवता पुरूषस्य अपानं तद् वायुं संश्रिता, एवं यत् अन्तरा द्यावापृथिव्योर्मध्यवर्ती आकाशः सैव बाह्यसमानः तस्मिन् विराजमानो वायुः व्यानः वाह्य इति शेषः । श्रीः ।

अधुनोदानं व्याख्याति—

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ।।९।।

तेजः अग्निरेव निश्चयेन उदानवायुः, तेन कारणेन उपशान्तं तेजः सत्यं यस्य स उपशान्ततेजाः क्षीणायुः, मनसि सम्पद्यमानैः इन्दियैः सह पुनर्भवं संसारमेव गच्छति ।। श्रीः।।

अधुना संकल्पमेव शरीरकारणं वर्णयति—

यच्चित्तस्तेनेष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथासङ्कल्पितं लोकं नयति ।।१०।।

यच्चित्तः चित्ते यादृशं संकल्पं करोति तेनेव संकल्पेन एषः जीवात्मा प्राणमायाति प्राप्नोति नयनाय, प्राणस्तु तेजसा उदानेन सहितः जीवात्मानमेवं यथा संकल्पितं संकल्पमनतिक्रम्य तद् रचितं लोकं नयति ।।श्री।।

अधुना फलश्रुतिं गायति–

य एवं विद्वान्प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ।।११।।

यः एवंभूतः विद्वान्, प्राणं तत्कारणनिर्गमनप्रतिष्ठानोत्क्रमणबाह्याध्यात्माभिधान सहितं वेद जानाति, अस्य ज्ञातुः प्रजा सन्ततिपरमपरा न हीयते न नष्टः भवति, सच अमृतो भवति । तदुपसंहारे श्लोकः ।।श्रीः।।

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति ।।१२।।

एवं प्राणस्य उत्पत्तिं परमात्मनः सकाशात्, आयतिं प्रतिशरीरमागमनं मनः संकल्पेन, स्थानं स्थितिं चक्षु श्रोत्रादिषु, पञ्चधा विभुत्वं प्राणापानसमान व्यानोदानरुपेण व्यापकत्वं च चाक्षुषानुग्रहरूपेण, अध्यात्मं च विज्ञाय अमृतं परब्रह्म परमात्मानं भुङ्क्ते साक्षात्कृत्यानन्दमनुभवति द्विरुक्तिर्दृढ़तायै इति शब्दश्च प्रश्नसमाप्तिसूचकः ।

।। इति तृतीयः प्रश्नः ।।
।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ चतुर्थः प्रश्नः ।।

प्राणेन सह आत्मनः सम्बन्धं श्रुतिर्वर्णितवती तृतीये प्रश्ने । अथ प्राणादियुक्ते शरीरेऽस्मिन् कोऽपि अधिष्ठातृरूपेण वर्तते, यतो हि गृहं कस्मैचित् स्वामिने निर्मीयते तर्हि गृहस्वामिनोऽपि कैश्चित् क्रियाकलापैर्भवितव्यमिति पञ्चप्रश्नान् पृच्छति सौर्यायणी ।

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ—भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ।।१।।

अथ गर्गवंशीयः सौर्यायणी पिप्पलादं पञ्चप्रश्नान् पप्रच्छ–भगवन् ! एतस्मिन् पुरुषमये शरीरे कानिं स्वपन्ति शयनं कुर्वन्ति, कानि जाग्रति प्रबुध्यन्ते, एषः कतरः किन्नामकः देवः स्वप्नान् स्वप्नव्यापारान्पश्यति, एतत् सुखं स्वाप्नं कस्यानुभवितुर्भवति, **कस्मिन्** आधारविशेषे सर्वे शरीरशक्तिविशेषाः संप्रतिष्ठिताः लब्धप्रतिष्ठाः । इति पञ्च प्रश्नाः ।।श्रीः।।

अथ पिप्पलाद उत्तरयति–

तस्मै च होवाच यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ।।२।।

तस्मै गार्ग्याय स पिप्पलाद: उवाच—ह निश्चयेन गार्ग्य । सम्बोधनमेतत् यथा अर्कस्य सूर्यस्य अस्तं गच्छत: सायंकाले सर्वा:मरीचय: किरणा: तस्मिन् तेजोमण्डले गोलाकारे एकीभवन्ति अनेके एक इव सम्पद्यन्ते, पुनश्च उदयत: प्रसरन्ति, एवमेव परे देवे तिष्ठति सति मनसि स्वान्ते तत्सर्वं सकलेन्द्रियव्यापारयूथं एकीभवति एकाकारमेव समपद्यते । तेन इनिद्रयव्यापारविश्रामेण एष पुरुष: जीवात्मा न शृणोति श्रोत्राभ्या न पश्यति दृग्भ्यां, न जिघ्रति घ्राणेन, न रसयते रसनया, न स्पृशते त्वचा, नाभिवदते वाचा, नादत्ते हस्तेन, नानन्दयते शिश्नेन, न विसृजते पायुना, न इयायते चरणेन एवं दशेन्द्रियाणां शिथिलतया अयं पुरुष: स्वपिति इति जना: आचक्षते कथयन्ति ।। श्री:।।

अथ द्वितीयप्रश्नमुत्तरयति—

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद् गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ।।३।।

अत्र यज्ञरूपकेण विषयं स्पष्टयति । प्रथमप्रश्नोत्तरे मनसीन्द्रियेषु संभृतेषु सर्वव्यवहारोपरमार्थ: स्वपिति पुरुषपर्यायो जीवात्मेति व्याख्यातम्, अधुना जागरं चर्चयति । प्राणा: अग्नय: इव इति प्राणाग्नय: **उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्या प्रयोगे** इत्यनेनोपमितसमास: । इमे एव पञ्च अस्मिन् पुरे शरीरे जाग्रति दिवारात्रं क्षणमपि व्यापारान्न विरमन्तीति भाव: । अथ क: प्राण: कोऽग्निरिति प्राह गार्हपत्य: अपान: अन्वाहर्यपचन: दक्षिणाग्नि: व्यानवत् । प्राण: अपानादूर्ध्वं प्रणीयते तथैव गार्हपत्यात् आहवनीय: प्रणीयते अत: स एव प्राण: ।।श्री:।।

अधुना समानोदानौ वर्णयति–

यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः । मनो ह वाव यजमानः । इष्टफलमेवोदानः । स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ।।४।।

यत् उच्छवासनिश्वासौ आहुती: इव सम्यगुन्नयति इति अस्मात् स समान: । ह वाव इहि निश्चयवाचकनिपातत्रयम्, मन: यजमान: यज्ञकर्ता, उदान: इष्टफलं यथा यज्ञफलं उपरि नयति तथैव उदानोऽपि यजमानरूपं मन: ब्रह्म परमेश्वरं प्रति गमयति । अत्र रूपके केवलं जागरूकताभिप्राय: न तु निन्द्रानन्दस्य प्रसंशा ।। श्री:।।

अथ तृतीयप्रश्नमुत्तरयति–

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति । यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति । देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चाहदृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ।।५।।

अत्र अस्मिन् शरीरे एषः पुरिशयान आत्मदेवः, स्वप्ने तदवस्थायां महिमानं निजैश्वर्यम् अनुभवति, तथा यज्जाग्रति, दृष्टं तदपि यच्चादृष्टं दृष्टभिन्नं पश्यति चक्षुषा, यत् श्रुतं जाग्रति अश्रुतं श्रुतभिन्नं शृणोति स्वप्ने श्रोत्राभ्यामेवमेव देशदिगन्तरैः भ्रम्यमाणैः प्रत्यनुभूतं दृष्टमदृष्टं, श्रुतमश्रुतम् अनुभूतं तद् भिन्नं सर्वमपि सर्वः सर्वस्वरूपः पश्यति साक्षात्कुरुते । श्रीः ।

अथ चतुर्थप्रश्नं समाधत्ते—

स यदा तेजसााभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति ।।६।।

यदा यस्मिन् काले स देवः पुरुषः तेजसा उदानाख्येन अभिभूतः तदा स्वप्नान् न पश्यति आनन्दमयत्वात्, तदा एतस्मिन् शरीरे एतत् सुखं पुरूषस्यैव भवति।।श्रीः।।

अधुना समेषां शरीरधर्माणां परमात्मानि प्रतिष्ठां स्थापयति—

स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।७।।

हे सोम्य ! सोमं अर्हतीति सोम्यः **सोमस्य यः** इत्यनेन य प्रत्ययः । यथा येन प्रकारेण वयांसि विहगाः सायंकाले वासोवृक्षं, वसनं वासः सान्तः क्लीबेऽयं शब्दः वस्त्रपर्यायः निवासरूपेऽर्थेऽत्र प्रयुक्तः, यद्वा वासः वस्त्रं तद्वत् निजावरकत्वात् वृक्षः वासोवृक्षः तं नीडम्, यथा कोऽपि शीतकम्पितः वस्त्रेणात्मानमावृणोति तथैव पक्षिणः शीतहिंसकभयात् वस्त्ररूपे निजकृते वृक्षनीडे स्वं गोपायन्ते । अतो वासोवृक्षः नीडः इति वयम् । यत्तु वासार्थं वृक्षमिति विग्रहणते तच्छब्दगाम्भीर्यमजानन्ता उपेक्ष्याः । तथैव समनस्कं सर्वमिन्द्रियजातं परे आत्मनि परमेश्वरे संप्रतिष्ठते विश्रामयति प्रलय इति भावः ।

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजसश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहंकारश्चाहंकर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ।।८।।

अत्र शब्दा: स्पष्टा: भावस्तु—यानि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशपंचमहाभूतानि याश्च गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाख्या: तन्मात्रा:, यानि चक्षुश्श्रोत्रघ्राणरसनात्वग्वाग्घस्त पायुपस्थपादनामकानीन्द्रियाणि, ये च श्रवणदर्शनघ्राणरसनस्पर्शनवचनोपादान–विसर्गानन्दगमनाख्यास्तद्विषया:, यानि मनोबुद्ध्याहंकर्तव्यचेतयितव्यनामिकास्तद्वृत्तय: यौ च तेज:प्राणौ, यौ च विद्योतयितव्यविधारयितव्येति तद्धर्मौ इमे च षड्विंशति: परात्मनि तस्मिन् विलीयन्ते । संग्रहश्चात्र दृष्टव्य:—

पंचभूतानि तन्मात्रा इन्द्रियाणि तदर्थक: ।
सवृत्यन्त:करणानि तेज: प्राणौ सधर्मकौ ।।
इमे षड्विंशतिस्तस्मिन् लीयन्ते परमात्मनि ।
प्रविशन्ति यथा नीडं सायंकालेऽथ पक्षिण: ।।श्री:।।

अथ सर्वेषामाधारभूतो जीवात्माऽयं कुत्र प्रतिष्ठते इत्यत आह–

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरूष: स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।९।।

एवं एष: द्रष्टा रूपस्य, स्प्रष्टा स्पर्शयितव्यशरीरस्य, श्रोता शब्दस्य, घ्राता सुगन्धस्य, रसयिता रसस्य, मन्ता मननीयस्य, बोद्धा बोधनीयस्य, कर्त्ता करणीयस्य, एवं विशेषेण ज्ञायते जीवब्रह्मणो: सम्बन्ध: सेव्यदास्यवात्सल्यसख्यमाधुर्यभावोपपन्नो येन तद्विज्ञानं भगवद्भजनरूपमात्मा स्वरूपं यस्य तादृगयं प्रत्यगात्मा परे सकल-कार्यकारणातीते अक्षरे, न क्षरति परमानन्दरसो यस्य सोऽक्षर: निजभक्तदर्शनदायक इति भाव:, तस्मिन् अक्षरे, आत्मनि आदत्ते स्वीकरोति भक्तानां पत्रपुष्पफलजलानि य: स आत्मा तस्मिन्, आत्मनि परमात्मनि श्रीरामाभिधेयब्रह्मणि संप्रतिष्ठते सम्यक् प्रतिष्ठावान् भवति । सायुज्यमुक्तिं लभत इति भाव: ।

अधुना ब्रह्मविज्ञानं स्तौति—

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य । स सर्वज्ञ: सर्वो भवति । तदेष श्लोक: ।।१०।।

हे सोम्य ! यस्तु परमात्मानमच्छायं नास्ति पापच्छाया यसिमन् तत् यद्वा अव्यक्ता जीवात्मरूपच्छाया यस्मिन्, यद्वा आकारो वासुदेव: विष्णुरेव छाया यस्य तत् अच्छायं महाविष्णुरूपं रामं, यद्वा नास्ति छाया मायारूपिणी यस्मिन् तत् अच्छायं मायातीतं तादृशम्, अशरीरमव्यक्तशरीरम्, अलोहितमरक्तं श्यामवर्णमिति भाव:,

यद्वा लोहितो रजोगुण: तद् भिन्नं, यद्वा लोहितो ब्रह्मा तद्भिन्नमेवं परमक्षरं पुरूषोत्तमं वेदयते जानाति, शुभ्रं वा यो वेदयते स परमक्षरं परमात्मानं प्रतिपद्यते प्राप्नोति । सैव जीवात्मा सर्व: व्यष्टिमर्यादाशून्यतया सर्वरूप: सर्वज्ञ: सर्वज्ञाता भवति ।।श्री:।।

पुनरिममर्थं संक्षिपन्नाह–

विज्ञानात्मा सह देवेश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ।।११।।

सर्वै: देवै: करणाधिष्ठातृभि: सहितानि भूतानि पृथिव्यादीनि प्राण: पञ्च एभि: सहितो विज्ञानात्मा भगवत्प्रपप्तिस्वभाव: जीवात्मा इमे सर्वे यत्र परमात्मनि श्रीरामचन्द्रे संप्रतिष्ठन्ति सम्यक् स्थानं लभन्ते, हे सोम्य ! तादृशमक्षरं सर्वकारणकारणं यस्तु वेदयते जानाति यद्वा विरहवेदनाविषयं करोति स सर्वज्ञ: सर्व: परमात्मा ते जानाति तथाभूत: सर्वं भगवन्तमेव आविवेश लडर्थे लिट् आविशतीति भाव:, इति शब्द: समाप्तिसूचक: ।।श्री:।।

।। इति चतुर्थः प्रश्नः ।।
।। श्री राघवे शन्तनोतु ।।

।। अथ पञ्चमः प्रश्नः ।।

अथ परं सगुणं ब्रह्म अपरं निर्गुणं ब्रह्म उभयोर्वाचकमोंकारं तयो: प्राप्तिकारणञ्च । तत्र परब्रह्मण: सगुणस्य भगवतो महाविष्णो: श्रीरामस्य प्राप्तये व्युत्पत्तिपक्ष आश्रयणीय औंकारस्य, यश्च व्याख्यातपूर्वो मया, अपरस्य निर्गुणस्य ब्रह्मण: प्राप्तये अव्युत्पन्नपक्ष आश्रयणीय:, सोऽपि प्रथमोपनिषदि सविस्तरं विवृतो मया अतस्तदुपासनचिकीर्षया प्रश्नोऽयं प्रारम्यते–

अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायेणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत । कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ।।१।।

अथ अनन्तरं शैव्य: शिविपुत्र: सत्यकाम: एतन्नामा पप्रच्छ प्रश्नं कृतवान्-भगवन् ! य: स: कोऽपि भाग्यवान् साधक: मनुष्येषु नरेष्वन्यतम: प्रायेण अन्ते शरीरत्यागवेलायाम् ओंकारं प्रणवं अभिध्यायीत् व्यत्ययेन लडर्थे लिङ्विधानं तथा च ध्यानविषयं करोति इति भाव:, तेन ध्यानविशेषेण स कतमं किं नामकं लोकं स्थानं जयति साधिकारं प्राप्नोति ।। श्री: ।।

पिप्पलादः तत् प्रश्नं समाधातुमुपक्रमते—

तस्मै स होवाच । एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ।।२।।

सः पिप्पलादः तस्मै सत्यकामाय ह निश्चित्य उवाच, उत्तरयाम्बभूव यत् हे सत्यकाम ! एतत् इदं श्रुति प्रतिपाद्यं परं सगुणं ब्रह्म च अपरं निर्गुणं ब्रह्म यत् श्रुतिभिः निगदितं तदेव ओंकारः नामार्थयोरभिन्नत्वात् समानाधिकरणम्, ओंकारो हि व्युत्पत्तिभेदेन सगुणं निगुर्णं च समभिधत्ते । ननु सगुणब्रह्मपरत्वे किं बीजं तस्यमाया-सवलत्वेन कथन्नापरत्वमङ्गीक्रियते ? इति चेन्मैवं वादीः, महतामपि महीयासं मायापतिं कथमाच्छादयितुमलं दोषनिकाया माया, कथमहोच्छाया मध्याह्नचण्डाशुं समावृणुयात् । तस्य च सगुणब्रह्मणः सन्निहितसकलगुणगणकल्याणगुणगणनिलयत्वेन भजनसौलभ्येन च परत्वं, तिरोहितगुणकतया दुराराध्यतया च निगुर्णणस्यापरत्वम्, इदमेव च भगवता गीतायाः द्वादशस्य पूर्वार्धे सुस्पष्टितम् । तत्र पार्थेन पृष्टं यत् त्वां श्रद्धया भजताम् इतरेषाम् चाक्षरजुषां मध्ये के योगवित्तमा इति । तद्यथा—

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।।

(गीता–१२/१)

तदनु भगवतैव तयोः सगुणनिर्गुणयोरैश्वर्यतारतम्यं निरसता उपासनासौलभ्येन सगुणब्रह्मणः श्रेष्ठत्वं प्रत्यपादि—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयो पेतास्ते मे युक्ततमा मता ।।

इदमेव मानसकृतापि प्रोक्तम्–

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम वस सगुन सो होई ।।

(मा० १/११६/२)

एतेन सगुणनिर्गुणयोः न्यूनाधिकत्ववादिनः परास्ताः ।

ओंकारः प्रणवः द्वयोरपि समानवाचकः विद्वान्साधकः एतेन आयतनेन आलम्बनेन एकतरं परमपरं वा अन्वेति आनुकूल्येन गच्छत्युपासनया नहि समानकालमेव द्वयोरप्युपासनं संम्भवम् ।।श्रीः।।

अथैकमात्रस्य ध्यानफलं वर्णयति—

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ।।३।।

प्रणवेऽस्मिन् तिस्रः मात्राः, यदि कोपि एकमात्रं ह्रस्वमभिध्यायीत चिन्तयति स तेनैव ध्यानेन संवेदितः प्रेषितः सन् तूर्णं शीघ्रं जगत्यां संसारे अभिसम्पद्यते । ऋचः ऋग्वेदमन्त्राः तमेकमात्रध्यायिनं मनुष्यलोकं मर्त्यलोकमुपनयन्ते प्रेषयन्ति, तत्र मर्त्ये लोके सः तपसा चान्द्रायणादिना ब्रह्मचर्येण द्वन्द्वधर्मवर्जनेन श्रद्धया आस्तिकबुद्ध्या सम्पन्नः महिमानमैहलौकिकमनुभवति ।

अधुना द्विमात्रध्यानफलं कीर्तयति—

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरून्नीयते सोमलोकम् । स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ।।४।।

अथ अनन्तरं यदि कोऽपि ह्रस्वदीर्घयुक्तेन प्रणवेन ध्यानविषयेण मनसि चेतसि सम्पद्यते, तदा सः यजुर्भिः यजुर्वेदमन्त्रैः अन्तरिक्षं गगनं तत्स्थं चन्द्रं सोमं तल्लोकमुन्नीयते तथा सोमलोके तत्रत्याः विभूतीः अनुभूय पुनः आवर्तते संसारसागरे ।।श्रीः।।

अथ त्रिमात्रध्यानमहिमानं वर्णयति–

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनेवाक्षरेण परं पुरूषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः सा सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परातपरं पुरिशयं पुरुषमीक्षते ।तदैतौ श्लोकौ भवतः ।।५।।

यः पुनः विशिष्टसाधकः त्रिमात्रेण ह्रस्वदीर्घप्लुतयुक्तेन परमपुरूषं श्रीराघवममिध्यायीत प्रणवं ज्योतिरूपिणमिति श्रुतेः, सः तेजसि सूर्ये तेजोमये रवौ सम्पन्नः इति प्रथमं वाक्यं, यथा येन प्रकारेण पादोदरः, पादः उदरं यस्य सः सर्पः त्वचा चर्मणा निर्मुच्यते तथैव अयं साधकोऽपि सर्वपाप्मना प्रारब्धजनितपापेन विनिर्मुक्तः सामभिः सामवेदीयैः मन्त्रैः ब्रह्मलोकं साकेतमुन्नीयते, तत्र गतः सन् एतस्मात् जीवघनात् संसारात् विरतः सन् पुरिशयं शरीरेऽन्तर्यामित्वेन शयानं पुरुषं धनुर्बाणोपलक्षितं पुरुषत्वयुक्तं सीताभिरामं श्रीराममीक्ष्यते चाक्षुषप्रत्यक्षविषयं करोति । तत् प्रश्नसंग्रहरूपेण एतौ द्वौ श्लोकौ मन्त्रौ भवतः शोभेते ।। श्रीः ।।

अधुना प्रश्नोपसंहारं लक्षयति—

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुकताः ।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ।।६।।

ओंकारे, मृत्युमत्यः मृत्युः मरणं अस्ति यासु तथाभूताः मात्राः त्रिसंख्याकाः प्रयुक्ताः त्रिष्वपि मरणमावागमनं वर्तत एव ब्रह्मलोके, त्रिमात्रपरिणामे यद्यपि परमपुरूष-दर्शनं भवति **छायातपयोरिव ब्रह्मलोके** इति श्रुतेः, तथापि ततोऽपि पुनरावर्तनं भवति **आ ब्रह्मभुवनाल्लोका पुनरावर्तिनोऽर्जुन** इति श्रुतेः । एवमन्योन्यसक्ताः प्रत्येकं मिलिता अविप्रयुक्ताः ध्यानकालेऽपि विप्रयोगरहिता, एवं भूतासु आसु बाह्याभ्यनतरमध्यमासु प्रथमा बाह्यायां द्वितीया आभ्यान्तराख्यायां तृतीया च मध्यमायामेवं सम्यक् प्रयुक्तासु ज्ञः परमात्मवेत्ता न विकम्पते न स्थितेः चलतिः ।

तमेवार्थं भूयः स्पष्टयति—

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते ।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यतच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ।।७।।

ऋग्भिरेतं पृथ्वीलोकं, यजुर्भिः करणैः अन्तरिक्षं भुवलोकं, सामभिः करणैः यत् कवयः विद्वांसः वेदयन्ते जानन्ति तत् ब्रह्मधाम प्रतिपद्यत इति शेषः । एवं सकामः, निष्कामस्तु ओंकारेणैव आयतनेन जप्यमानेनालम्बनेन विद्वान् भगवदीयसेव्यसेवक-सम्बन्धज्ञाता, तं तमेव तमालनीलम् अन्वेति अनुगच्छति, यत् ब्रह्मपदं शान्तं प्राकृतसत्वरजस्तमोरहितमजरं नविद्यते जरा यस्मिन् तत् कमनीयकिशोरमूर्तिममृतं कालातीतत्वान्मरणरहितमभयं निरस्तमायाकुहूकत्वात् भयरहितं, परं सर्वेभ्यः इन्द्रियार्थमनोबुद्धिप्रत्यगात्मप्रकृतिभ्यः परं तादृशं परमात्मानं निष्कामः प्रणवं प्रणमन् प्राप्नोति ॥ श्रीः ॥

।। इति पञ्चमः प्रश्नः ।।
।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ षष्ठः प्रश्नः ।।

पञ्चमप्रश्ने पञ्चममन्त्रे एतस्मात् जीवघनात् **पुरिशयं पुरुषमीक्षते** इत्युक्तम् । तत्र जिज्ञासेयमुदेति–कियत् कलात्मकोऽयं पुरूषः कथं शरीरेऽस्मिन् निवसति, किमस्य कार्यमिति सर्वजिज्ञासितं समाधातुं प्रश्नोऽयं प्रारभ्यते—

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन्हिरण्यनामः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत् । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ । तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति । समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतंवक्तुम् । स तूष्णीं रथमारूह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ।।१।।

अथ अनन्तरं, ह निश्चयेन, एनं पिप्पलादं भारद्वाजः भरद्वाजसूनुः सुकेशा पप्रच्छ प्रश्नं चकार । एतत् प्रश्नोपक्रमे निजाल्पज्ञतां प्रदर्शयति—भगवन् ! यं प्रश्नमहं करोमि तं केवलजिज्ञासार्थं एतद्विषये ममाल्पज्ञता अन्येषामपि समक्षे स्पष्टा, अहं च निरूत्तरोऽभवम् । कदा स्वघटनां कथयति–कोसल्यः कोसलजनपदीयः हिरण्यनाभो नाम राजपुत्रः, राजसुतत्वेऽपि विचित्रजिज्ञास इति भावः । मां सुकेशानम् उपेत्य समीपमागत्य एवं प्रश्नं मया प्रक्ष्यमाणं अपृच्छत् पृष्ठवान्—भारद्वाज ! गुरु गौरवात् मुख्याभिधानमनुच्चार्य, त्वं षोडशकलं पुरूषं वेत्थ जानासि ? तं कुमारम् अल्पवयस्कमहमब्रुवम्—इमं ते कृतं प्रश्नमहं न वेद्मि न जानामि, यदि अहमवेदिषं ज्ञातवान् भवेयम् अत्र लिङर्थे लुङ्, ते तुम्यम् कथं न अवक्ष्यम् अब्रूयाम् नहि । स्वकीयमृजुत्वं प्रदर्शयति—एष जनः समूलः परिशुष्यति नष्टो भवति, यः साधनसम्बन्धे अनृतम् असत्यमभिवदति तस्मात् अनृतं वक्तुमसत्यं भाषितुं नार्हामि न क्षमे, अतस्त्वां न वञ्चयामि । इति मयि सत्यमुक्तवति तूष्णीं मौनीभूय हिरण्यनाभः रथमारूह्य प्रवव्राज परावृत्तः यद्वा प्रवव्राज प्रव्राट् त्यक्तगृहो महात्मा बभूव । तमेव प्रश्नं त्वां पिप्पलादं पृच्छामि अयं षोडशंकलः पुरूषः कुत्र तिष्ठति ? इति ।

प्रश्नं समाधातुमुपक्रमते–

तस्मै स हो वाच । इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरूषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ।।२।।

तस्मे सुकेशिने स पिप्पलादः उवाच—यस्मिन् पुरुषे एताः कलाः प्रभवन्ति स अन्तःशरीरे शरीरमध्ये हृद्देशे तिष्ठति ।

उपपत्तिमाह–

स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ।।३।।

सः पुरूषः ईक्षाञ्चक्रे जिज्ञासया निरीक्षणं चकार यत्—कस्मिन् शक्तिविशेषे उत्क्रान्ते शरीरं त्यक्ते, अहं पुरूषः उत्क्रान्तो भविष्यामि कृतोत्क्रमणो भविष्यामि, कस्मिंश्च प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठां गते प्रतिष्ठास्यामि प्रतिष्ठां प्राप्स्यामि । अत्र प्रतिष्ठा

शब्दादाचारे क्विप् प्रत्ययस्ततो धातुत्वात् लृट् लकारे रूपं, तथा च प्रतिठामाचरति इति प्रतिष्ठति तथा भूतो भविष्यामि इति प्रतिष्ठास्यामि । शुद्धधातोस्तु प्रपूर्वकात् प्रतिष्ठास्यै इति स्यात्, अर्थश्च उत्तमपुरुषैकवचनकर्तृकभविष्यत्कालावच्छिन्नपूर्व देशावधिकपरदेशसंयोगानुकूलव्यापाररूप: स्यात् । एवं कस्याधीनं मदुत्क्रमणं किमाधीना च मे प्रतिष्ठेति जिज्ञासा ।श्री:।

षोडशकलपुरुषरचनाप्रकारमाह—

स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिराप: पृथिवीन्द्रियं मन: ।

अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्रा: कर्मलोका लोकेषु च नाम च ।।४।।

अनन्तरमीक्षणशक्त्या स परमेश्वर: प्राणं प्राणन्ति जना: येन तथाभूतं सर्वप्राणाधारं, हिरण्यगर्भं ब्रह्मणमसृजत् व्यरीरचत् । तस्मात् श्रद्धां कर्मफलधारिणीं शक्तिम्, अनन्तरं सर्वकारणभूतानि पंचमहाभूतानि, पुन: उपभोगसाधनानि दशेन्द्रियाणि, मन: अनन्तरं भोजनार्थमन्नं, पश्चाद् वीर्यं, पश्चात् तपोमन्त्रा:, अनन्तरं लोका: चतुर्दश तेषु नाम तत्तदभिधानमसृजत् । श्री: ।

अधुना पुरूषे षोडशकलानां विश्रामं समुद्रेण दृष्टान्तयति—

स यथेमा नद्य: स्यन्दमाना: समुद्रायणा: समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यन्ते । एव मेवास्य परिद्रष्टुरिमा: षोडशकला: पुरूषायणा: पुरूषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोक: ।।५।।

नदीसमुद्रदृष्टान्तेनाह–यथा इमा: स्यन्दमाना: सलिलं स्रवन्तो नद्य:, समुद्र: अयनं गन्तव्यस्थानं यासां तथाभूता: समुद्रं सागरं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति विश्राम्यन्ति तासां गंगादिनाम धवलादिरूपं च भिद्येते, ता अपि सागरसङ्गमे समुद्र इत्येव प्रोच्यन्ते कथ्यन्ते, वस्तुत: न सन्ति समुद्र:, तथैव इमा: समनस्कदशेन्द्रियपञ्चभूतनाम्न्य: कला: पुरुषायणा: पुरूष एव अयनं लक्ष्यं यासां ता:, पुरुषं प्राप्य अस्तं गच्छन्ति विलीयन्ते, तासां नामरूपे अभिधानाकृती भिद्येते भिन्ने भवत: पुरुष इत्युच्यन्ते कथ्यन्ते । एवं स पुरुष: अकल: कलारहित:, अमृत: भवति तदेष श्लोक: । श्री:।

इममेवार्थं स्पष्टयति—

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिता: । तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्यु: परिव्यथा इति ।।६।।

रथनाभौ स्यन्दननाभौ, अरा: उपकरणविशेषा: इव यस्मिन् भगवति प्रतिष्ठिता:, तं वेद्यं वेदनीयं पुरुषं परमात्ममानं वेद जानीत यथा भूय: मृत्यु: मरणं, व: युष्मान्, मा परिव्यथा मा कष्टं ददातु । इति शब्दोऽयं समाप्तिसूचक: ॥ श्री: ॥

अधुना सकलप्रश्नोपसंहारं सूचयति—

तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद । नात: परमस्तीति ।।७।।

तान् सुकेशसत्यकामसौर्यायण्याश्वलायनवैदर्भिकबन्धिन: स उवाच—अहं पिप्पलाद: एतद् ब्रह्म परमेश्वरं एतावन्मात्रायामेव सामग्र्येण न जानामि, यतो हि तद् अनिवर्चनीयम्, कियत् जानाति भवान् इत्यत् आह—अत: अस्मात्, परं श्रेष्ठं परायणं गन्तव्यं वा अन्यत् किमपि नास्ति इति ग्रन्थसमाप्तिसूचक: ।

उपदेशानन्तरं जिज्ञासव: षड्ऋषिकुमारा: कृतज्ञतां प्रकाशयन्ति–

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि न: पिता योऽस्माकमविद्याया: परं पारं तारयसीति । नम: परमऋषिभ्यो नम: परमऋषिभ्य: ।।८।।

ते सुकेशादय: तं पिप्पलादम् चर्चयन्त: पूजयन्त: अब्रुवन् इति शेष:, हि निश्चयेन, अस्माकं षड्जिज्ञासूनां त्वं पिप्पलाद:, पिता पात्रत्वात् पातीति पिता इति व्युत्पत्ते: विद्या दायकत्वाच्च पिता । तथा च पञ्चपितरौ नीतौ प्रसिद्धा:—

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रपच्छति ।
अन्नदाता भयात्त्राता पंचैते पितर: स्मृता: ।।

य: भवान्, न अस्मान् अविद्याया: सरित: परम्पारं तारयसि, गमयसि वर्तमानसामीप्याद् वर्तमाननिर्देश:, प्रकृतिभावं प्राप्ता: शरीरजीवसन्धिविवर्जिताश्च विकल्पशून्यत्वात् च विकल्पविधिपरिहारप्रयोगपुरस्सरं नमस्कुर्वन्ति । नम: परम ऋषिभ्य: नम: परममन्त्र द्रष्टृभ्य:, नम: परमऋषिभ्य: नम: पूज्यमन्त्रदृश्भ्य: ।

षट् प्रश्नानामुत्तरं ह्युतरस्यां मीमांसायां वर्णनीयं श्रुतीनाम् ।
कन्दस्यामं लोकनेत्राभिरामं सीतारामं ब्रह्म रामं नतोऽस्मि ।।
कदायावदहं नाथ त्वत्पदाम्भोजगन्धत: ।
दूरो रोत्स्यामि सीतेश प्रश्नमुत्तरयस्व मे ।

।। इति षष्ठ: प्रश्न: ।।

इति श्री चित्रकूटनिवासिसर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वरजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभ्रदाचार्यमहाराजकृतौ प्रश्नोपनिषदि श्रीराघवकृपाभाष्यं सम्पूर्णम् ।

।।श्री राघवो: शन्तनोतु।।

●

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

प्रश्नोपनिषद्

श्रीराघवकृपाभाष्य

श्री प्रश्नोपनिषद् का
पदवाक्यप्रमाणपारावारीण-
कवितार्किकचूडामणि वाचस्पति-
श्री जगद्गुरूरामानन्दाचार्य स्वामि रामभद्राचार्य-
प्रणीत श्रीमज्जगद्गुरूरामानन्दाचार्यसम्प्रदायानुसारि
विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त-प्रतिपादक श्रीराघवकृपाभाष्य ।।

।। श्रीमद्राघवो विजयतेतराम् ।।

।। श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ।।

प्रश्नोपनिषद्

श्रीराघवकृपाभाष्य

।। मंङ्गलाचरणम् ।।

कस्त्वं गौर कुमार पूजितपदः श्यामोऽभिरामोधनु-
र्वाणं तूणमथो वहन्वनभुवं संभूषयन्भ्राम्यसि ।
किं नारायण आगतः सह नरो देवत्रयं ब्रह्म किं,
रामो मारुतिनेति मंजुविहितप्रश्नः प्रसन्नोऽवतु ।।१।।

वियत्खेलन् कोऽयं विधुरितिकुतः प्रादुरभवत् ।
पयोधेः किं शुभ्रं जननि नवनीतं नहि नहि ।।
कथं मध्ये श्यामस्तममल्य मे राघव इति ।
कृत प्रश्नः प्रश्नोपनिषदमलार्थो विजयते ।।२।।

वन्दे वन्दारुवृन्दानां वन्द्यपादपयोरुहम् ।
खेलन्तं काकतोकेन राघवं धूलिधूसरम् ।।३।।

यत्कृपामृततृप्तोऽहं क्षुत्क्षामचरचेतनः ।
रामानन्दं प्रणौभ्याद्यं स्वाचार्यं जगतां गुरुम् ।।४।।

तुलसीदासपादाब्जे बुभूषामि मधुव्रतः ।
नीतोऽहं कृपया यस्य श्रीमानसमरालताम् ।।५।।

श्रीराघवकृपाभाष्यं श्रीराघवमुदे मया।
आचार्यरामभद्रेण प्रश्नोपनिषदि भाष्यते ॥६॥

अथर्ववेदस्य च पिप्पलाद-
शाखीयसुब्राह्मणमध्यगैषा ।
प्रभाति प्रश्नोपनिषद् गभीरा
प्रश्नाश्च यस्यां शुचि षड्‌ऋषीणाम् ॥७॥

श्रुतीनां सारसर्वस्वाँस्तान्याख्यातुमुपक्रमे।
नत्वा प्राभज्जानिं सन्तः शृण्वन्तु गतमत्सराः ॥८॥

सीतारामचरनकमलरेनु सिर धर,
हृदय निहोरि गनपतिगुरू गौरि हर।
सुधिकरि रामभक्त अग्रणी कृपा निधान,
जगद्गुरु आद्यरामान्दाचार्य जतिवर॥
श्रुतिसार निखिल निचोरि मतिमज्जुबोरि,
राष्ट्रभाषा चित्रकूट तुलसी पीठधीश्वर।
रामभद्राचार्य श्रुतिसंम्मत विशिष्टाद्वैत,
राघवकृपाभाष्य भासों प्रश्नोपनिषद् पर॥

शान्तिपाठः

प्रश्नोपनिषद् अथर्ववेद की पिप्पलादशाखा में पढ़ी गयी है। इसमें छः ऋषियों के प्रश्न हैं। मंगल की कामना करते हुए ऋषियों ने शान्ति पाठ हेतु यहाँ दो मन्त्र पढ़े हैं, प्रथम अपने मङ्गल के लिए और द्वितीय जगत् के मङ्गल के लिए॥ श्री॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे देवताओं! हम अपने कानों से भद्र शब्द ही सुनते रहें। यज्ञ करते हुए हम अपनी आखों से भद्र रूप ही

देखते रहें। हम अपने स्थिर अंगों से एवं सूक्ष्म शरीरों से स्तुति करते हुए अपने जीवन की शेष आयु देवताओं अर्थात् दैवी संपत्ति से युक्त महापुरुषों के हित में लगा दें।। श्री।।

व्याख्या– श्रुति ने भी भारतीय संस्कृति का पालन करके भद्र शब्द से ही रामभद्र का संकेत किया है। प्रभु श्रुति के पति हैं। शास्त्र में पति का नाम लेना निषिद्ध है। इसलिए श्रुति ने रामभद्र न कह कर भद्र कहा। अत: अब अर्थ होगा कि हम अपने कानों से रामभद्र के गुणगण सुनते रहें। अपने नेत्रों से रामभद्र को ही देखते रहें तथा स्थिर अंगों एवं सूक्ष्म शरीरों से रामभद्र की स्तुति करते हुए अपनी शेष आयु को श्रीरामभद्र के लिए ही अर्पित कर दें। निरुक्तकार ने भद्रशब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है— "भवनं रमयति इति भद्र:" अर्थात् जो अपनी उपस्थित से लोगों को आनन्दित कर दे वही भद्र हैं। भगवान् राम की भद्रता का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के अयोध्याकाण्ड के तीसरे सर्ग में कहा है— जो गन्धर्व राज के समान सुन्दर तथा लोक में विख्यात पौरूष वाले हैं, जिनका सत्व दीर्घ, भुजाएँ महान् तथा जो मतवाले हाथी के समान चलते हैं, जिनका मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है और जो अत्यनत प्रिय दर्शन वाले हैं, एवं जो विषयियों के मन को रूप से तथा साधकों के मन को औदार्य से एवं सिद्धों के मन को गुणों से अपने दर्शनमात्र द्वारा आकर्षित कर लेते हैं, ऐसे धूप से तप्त प्राणियों को मेघ की भाँति समस्त प्रजाओं को अह्लादित करते हुए, अपने पास सोपानों से धीरे-धीरे आते हुए, भगवान् श्रीराम को देखकर महाराज दशरथ देख कर भी तृप्त नहीं हुए (वा०रा० २५,२६,२७)। भगवान् श्रीराम का रूप इतना मोहक और इतना लोकोत्तर है कि जिसके सम्बन्ध में बाल्मीकिरामायण में अयोध्यावासी कहते हैं—

यश्च रामं न पश्येत्तु यञ्च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विर्गहते।।

—(वा०रा० २,१७,१४)

अर्थात् जो इस जीवन में भगवान् राम को नहीं देख पाता और भगवान् राम जिसको नहीं देखते उसकी सभी लोकों में निन्दा होती है और उसके शरीर में रहने वाले अन्तर्यामी परमात्मा भी उसे फटकारते हैं। चतुर्थ चरण में श्रुति ने भगवान् के लिए अपने जीवनसमर्पण की बात कही है। लगता है कि यहाँ श्री जटायु के जीवन से ही प्रेरणा ली गयी है।। श्री।।

अब द्वितीय शान्ति पाठ की व्याख्या करते हैं— विस्तृत यश वाले इन्द्र हमारा कल्याण करें। तथा सम्पूर्ण विश्व को जानने वाले सबके पोषक भगवान् सूर्य हमारा कल्याण करें। शत्रुओं के लिए सुदर्शन चक्र के समान कठोर श्री गरुड देव हमारे लिए स्वस्तयन करें एवं वाणी के प्रति देवगुरू बृहस्पति हमारे लिए स्वस्तयन का पोषण करें॥ श्री॥

व्याख्या– यहाँ इन्द्र, सूर्य, गरुड़ बृहस्पति इन चार भगवद्विभूतियों से स्वस्ति की कामना की गयी हैं। श्री गीता में इन चारों को भगवान् की विभूति कहा गया है। जैसे—

इन्द्र– देवानामस्मि वासवः। (गीता १०/२२)

सूर्य– ज्योतिषां रविरंशुमान्। (गीता १०/२१)

गरुड– वैनतेयश्च पक्षिणाम्। (गीता १०/३०)

वृहस्पति– पुरोधसाञ्च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्। (गीता १०/२४)

जीवों की त्रिविध ताप निवारण के लिए तीन बार शान्ति शब्द का उच्चारण किया गया है॥ श्री॥

॥ अथ प्रथमप्रश्न ॥

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्यायणी च गार्ग्यः कौसल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥१॥

अब प्रश्नोपनिषद् का भाष्य प्रारम्भ किया जाता है। इस उपनिषद् में छः प्रश्न किये गये हें इसलिए इसे प्रश्नोपनिषद् कहते हैं। भारद्वाज ऋषि के पुत्र महर्षि सुकेशा, शिवि के पुत्र सत्यकाम, गर्ग गोत्र में उत्पन्न सौर्यायणी, कौशलदेश में रहनेवाले आश्वलायन, भृगुगोत्र में उत्पन्न वैदर्भि एवं कात्यायन के प्रपौत्र कबन्धी ये छवों ब्रह्म की खोज करते हुए, ''यह हमको सब कुछ बता देंगे'' ऐसा दृढ़ विश्वास करके भगवान् पिप्पलाद के पास आये। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि श्रुति ने पिप्पलाद को भगवान् क्यों कहा? **उत्तर–** यहाँ 'भग' शब्द ही भगवान् का वाचक है। 'भगानि सन्ति यस्मिन् सः भगः' जिसमें ज्ञान, शक्ति आदि छवों ऐश्वर्य नित्य रहते हैं, वे भगवान् ही 'भग' हैं और वे 'भग' अर्थात् भगवान् जिनके हृदय में रहते हैं उन्हें

भगवान् कहा जाता है। पिप्पलाद भगवान् नहीं प्रत्युत भगवान् से युक्त हैं। क्योंकि प्रभु श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई भगवान् हो ही नहीं सकता। भागवत (१/१८/२१) में सूत जी स्वयं सौनक से कहते हैं कि— हे ऋषियों! जिन भगवान् के चरणकमलनख का वह द्रव जो ब्रह्मा के पूजन उपहार का जल बनकर शंकर भगवान् सहित सभी मर्त्य तथा स्वर्गलोक निवासियों को पवित्र कर रहा है, ऐसे भगवान् श्रीराम से अतिरिक्त भगवत पदार्थ हो ही कौन सकता है।। श्री।।

संगति– ब्रह्मविद्या का अधिकार सम्पादन करने के लिए सुकेशा, शैब्य, सौर्यायणी, आश्वलायन, वैदर्भि तथा कबन्धी को महर्षि पिप्पलाद ने एक वर्ष तक अपने आश्रम में ही रह कर ब्रह्मचर्य पालन की आज्ञा दी।। श्री।।

तान्ह स ऋषिरुवाच– भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छत यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– महर्षि पिप्पलाद ने छहों जिज्ञासुओं से कहा— यद्यपि आप लोग ब्रह्मविद्या के अधिकार से सम्पन्न हैं फिर भी एक वर्ष पर्यन्त चान्द्रायणादि व्रतों की कठोर तपस्या, ब्रह्मचर्य पालन करते हुए, श्रद्धा पूर्वक मेरे आश्रम में निवास करेंगे। फिर आप मुझसे इच्छानुसार प्रश्न करेंगे। यदि हम आपके प्रश्नों का उत्तर समझ जायेंगे तो आपको उपदेश करेंगे। क्योंकि हम ईश्वर के समान सर्वज्ञ नहीं हैं। जीवात्मा का ज्ञान ससीम होता है।। श्री।।

संगति– अब पिप्पलाद की आज्ञा का पालन करके छहों महर्षियों ने उन्हीं के आश्रम में रह कर एक वर्ष पर्यन्त कठोर तपस्या, चान्द्रायणादि व्रत तथा ब्रह्मचर्य का श्रद्धापूर्वक पालन किया फिर समित्पाणि होकर उनके पास आये। अनन्तर ज्ञान वैराग्य के खड्ग से जिन्होंने मोह का सिर काट दिया है ऐसे कति के प्रपौत्र कबन्धी ने पिप्पलाद से पूँछा—

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ।
भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति।।३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब कत्य के प्रपौत्र कबन्धी ने निकट जाकर पिप्पलाद से पूँछा— भगवन् ये प्रजायें कहाँ से जन्म लेती हैं?

व्याख्या– 'गुरु' मैं ईश्वरबुद्धि करके आदरबुद्धि से कबन्धी ने प्रश्न किया ।। श्री ।।

संगति– अब पिप्पलाद कबन्धी के प्रश्न का समाधान करते हैं—

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब महर्षि पिप्पलाद कबन्धी के प्रश्न का उत्तर देते हैं। प्रजा की कामना करने वाले प्रजापति ब्रह्मा ने घोर तपस्या की और तप के अनन्तर रयि और प्राण नामक एक जुड़वे को प्रकट किया ।। श्री ।।

व्याख्या– 'रयि' 'प्राण' शब्दों को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद हैं। कुछ लोग इन्हें प्रकृतिपुरुष कुछ लोग पार्वतीपरमेश्वर कुछ लोग माया-महेश्वर मानते हें। परन्तु हम 'रयि' को चन्द्ररूप जीवनशक्ति और प्राण को सूर्यरूप प्राणशक्ति मानते हैं। यदि कहें कि इस मान्यता में क्या प्रमाण हैं ? तो हम कहेंगे कि वेदमन्त्र ही प्रमाण हैं। यथा— 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता' रयिप्रसङ्ग ।। श्री ।।

संगति– अब रयि और प्राण की भिन्न-भिन्न रूपता का वर्णन करते हैं। यहाँ प्रश्न होता है कि— पहले मन्त्र में रयि और प्राण की मिथुन संज्ञा दी गयी अब इन्हें सूर्यचन्द्रादि रूपों में कहा जा रहा है, ऐसा क्यों ?

उत्तर– मिथुन शब्द केवल पति-पत्नी के ही अर्थ में रूढ़ नहीं है। किसी एक कार्य में दो सहयोगियों के समूह को भी मिथुन कहते हैं ।। श्री ।।

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– सूर्य ही प्राण है और रयि चन्द्रमा। इस प्रकार मूर्त अर्थात् पृथ्वी, जल और तेज है एवं अमूर्त वायु और आकाश यह सब रयि है। मुख्यत; पृथ्वी ही रयि है ।। श्री ।।

संगति– अब समष्टि और व्यष्टि के प्राणप्रक्रियामय सूर्यनारायण का वर्णन करते हैं ।। श्री ।।

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान्

रश्मिषु संनिधत्ते। यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो तत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु संनिधत्ते ।।६।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– भगवान् आदित्य जब पूर्व दिशा में उदय होते हैं तब प्राच्य प्राणों को, दक्षिण ओर आकर दक्षिण प्राणों को, उत्तर ओर जाकर उदीच्च प्राणों को, तथा पश्चिम ओर जाकर प्रतीच्य प्राणों को अपनी किरणों से पुष्ट करते रहते हैं।। श्री ।।

संगति– अब आदित्य से प्राण की एकरूपता का निर्देश करते हैं—

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते। तदेतदृचाभ्युक्तम् ।।७।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– वही आदित्य सर्वरूपमय वैश्वानर अर्थात् विश्व में व्याप्त अग्नि हैं और वह प्राणों के साथ उदित होकर सबको प्रकाशित करते रहते हैं। यही बात ऋचा ने भी कही है— अर्थात् सूर्य और अग्नि में कोई अन्तर नहीं है।। श्री ।।

संगति– अब ऋचा उधृत की जा रही है।। श्री ।।

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणाः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ।।८।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– सारा संसार ही जिनका रूप है, जो हरिण अर्थात् हरितवर्ण वाले घोड़ों को अपने रथ में जोड़े हुए हैं तथा जिन्होंने अपने मण्डल में श्रीहरि शंखचक्रधारी श्रीनारायण को अथवा सीताजी की पीतकांति से युक्त हरितवर्ण वाले महाविष्णु को अपने मण्डल में विराजमान किया है ऐसे समस्त धनधान्य को उत्पन्न करने वाले, सभी जीवों के परायण, दिव्यज्योतिस्वरूप एकमात्र सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक, तपते हुए, सहस्रों किरणों वाले, अनेक रूपों में वर्तमान प्रजाओं के प्राणरूप यह सूर्यनारायण उदित हो रहे हैं। यहाँ प्राचीनों ने पूर्वार्ध के पदों में द्वितीयान्त पाठ मानकर 'दृष्ट्वा ऋषयो वदन्ति' इन तीन पदों का अध्याहार माना है। इस पक्ष में अर्थ करते हैं कि विश्वरूप, जातवेदा, सबके परायण, ज्योतिस्वरुप, सूर्यनारायण को उदित होते हुए देखकर ऋषिगण कहते हैं— सम्पूर्ण प्रजाओं के प्राण सहस्ररश्मि सूर्य उदय हो रहे हैं। परन्तु यह अर्थ करने पर वाक्यभेदकल्पना का गौरव तथा निरर्थक तीन पदों का अध्याहार मानना पड़ेगा। इसलिए हम ने इन द्वितीयान्त पदों में प्रथमा के अर्थ में द्वितीया का व्यत्यय माना है। इस पक्ष में पूर्वोक्त तीनों दोषों का संकट नहीं रहेगा।। श्री ।।

संगति– अब इसी रयि और प्राण का और विस्तार कर रहे हैं। जहाँ-जहाँ उत्पत्ति होती है वहाँ ये दोनों होते हैं। रयि का पूजन करके साधक प्रवृत्तिज्ञाता है और प्राण का आराधन करके संसार से निवृत्त हो जाता है ।। श्री ।।

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च। तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते। त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेव ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते। एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ।।९।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– कालिकसम्बन्ध से सम्वत्सर ही प्रजापति है। उसके उत्तर और दक्षिण यही दो अयन हैं। मकर राशि से लेकर मिथुन राशि पर्यन्त सूर्य उत्तरायण में रहते हैं यह उत्तरायण ही प्राण हैं। कर्क से लेकर धनु पर्यन्त सूर्य नारायण दक्षिण ओर उदित होते हैं, यही दक्षिणायन हैं। इसे पितृयाण भी कहते हैं। जो लोग इष्टापूर्ति आदि करके पितृयाण को जीतते हैं, वे चन्द्रमा को प्राप्त कर संसार में फिर लौट आते हैं। इसी लिए संतान के इच्छुक महानुभाव दक्षिणायन रूप पितृयाण की उपासना करते हैं। यही रयि और चन्द्रमा है ।। श्री ।।

संगति– अब इससे विपरीत निवृत्ति मार्ग की व्याख्या करते हैं ।। श्री ।।

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विधयाऽऽत्मानमन्विष्यादित्यममिजयन्ते। एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ।।१०।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इसके विपरीत उत्तरायणरूप देवयान से निवृत्तिवादी लोग प्रयाण करते हैं। वे लोक तपस्या, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा तथा ब्रह्मविद्या से अपने हृदयगुफा में विराजमान परमात्मा का अन्वेषण करके आदित्यलोक को जीत लेते हैं और प्रभु को प्राप्त हो जाते हैं। यही लोग प्राणों का आयतन एवं जीवों का परायण तथा अभयदान करके अमृततत्व को प्राप्त करते हैं। इसको प्राप्त करके साधक संसार में नहीं लौटते यहाँ सभी कर्मों का निरोध हो जाता है अर्थात् विश्राम हो जाता है। इसी तथ्य को अगले श्लोक में स्पष्ट करते हैं ।। श्री ।।

संगति– अब दो मन्त्रों के माध्यम से सम्वत्सर के आकार का वर्णन करती हुई श्रुति कहती हैं—

**पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ।।११।।**

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– कुछ महर्षिगण कुछ मनीषीगण सारे संसार के पिता संवत्सरात्मक सूर्यनारायण को पांच चरणों वाले एवं बारह शरीर वाले अद्भुत कहते हैं। कुछ लोग सूर्य नारायण को सारे संसार के जीवन दाता एवं 'पुरीषि' अर्थात् पुरुषोत्तममास के नियामक, सात घोड़ों से जुते हुए तथा छः पहियों से युक्त अद्भुत रथ पर आसीन तथा सर्वज्ञ कहते हुए इनकी उपासना करते हैं।। श्री ।।

व्याख्या– कुछ लोगों के मत में शिशिर ऋतु का हेमन्त में अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिए हेमन्त वसन्त ग्रीष्म वर्षा और शरद ये पाँच ऋतु ही सूर्य नारायण के चरण हैं। चैत्र, वेशाख, जैष्ठ, अषाढ, श्रावण, भद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन ये बारह महीने ही सूर्य नारायण के बारह शरीर हैं। प्राचीन आचार्यो ने यहाँ 'पुरीषि' शब्द का जल अर्थ करके 'पुरीषिणं' का जल देने वाला अर्थ माना है। सूर्य नारायण का जल वर्षाना शास्त्र में प्रसिद्ध भी है। वाल्मीकिरामायणीय आदित्यहृदय-स्तोत्र के बाईसवें श्लोक में 'वर्षत्येष गभस्तिभिः' अर्थात् सूर्य नारायण अपनी किरणों से वर्षा करते हैं। इससे यद्यपि भगवान् सूर्य का जलवर्षण कार्य सिद्ध होता है तथापि सामान्यरूप से संस्कृत साहित्य में 'पुरीषि' शब्द का मल ही अर्थ प्रसिद्ध है और यहाँ मास की चर्चा चल भी रही है अत; मेरी दृष्टि से बारह महीने सूर्यनारायण का शरीर तथा पुरुषोत्तम मास ही उनका 'पुरीषि' है। इसी लिए उसको लोकभाषा में मलमास भी कहते हैं। सूर्यनारायण के सात घोड़ों का समूह ही सप्तचक्र है। कुछ लोगों के मत में शिशिर को अलग मानकर छः ऋतुओं की अवधारणा की गयी और वे ही छः ऋतु सूर्यनारायण के रथ के पहिये हैं। ऐसे रथ पर आसीन सूर्य नारायण को विचक्षणरथी सर्वज्ञ कहते हैं।। श्री ।।

संगति– फिर प्रजापति को श्रुति मास के रूप में कह रही है।। श्री ।।

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्षः एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेत ऋषयः शुक्ल इष्टं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ।।१२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– मास ही प्रजापति अर्थात् सबको जन्म देने वाला है। उसमें कृष्ण पक्ष रयि और शुक्लपक्ष प्राण है। निवृत्तिवादी

ऋषिगण शुक्लपक्षरूप प्राण में इष्ट अर्थात् पूजन करते हैं। जैसे अन्य लोग अर्थात् प्रवृत्तिवादी कृष्णपक्ष में क्योंकि उनको आवागमन अभीष्ट है।। श्री ।।

संगति– फिर दिनरात्रि के रूप में प्रजापति की कल्पना करते हैं।। श्री ।।

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ।।१३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– दिनरात्रि का समूह ही प्रजापति है। दिन प्राण है और रात्रि रयि। जो लोग कामान्ध होकर दिन में अपनी पाणिगृहीत पत्नी से भी सम्भोगात्मक रतिक्रीडा करते हैं वे अपने प्राण को ही स्खलित करते हैं अर्थात् दिन में पत्नी के साथ सम्भोग से आयु समाप्त होती है, पुण्य क्षीण होता है और अनेक रोगों का जन्म होता है। और जो लोग रयि रूप रात्रि में धर्मतः विवाह कर लायी हुई पत्नी से उसकी इच्छा के अनुसार रति क्रीडा करते हैं, वे ब्रह्मचर्य का ही पालन करते हैं। इसलिए विवाहित होने पर भी भगवान् श्रीराम और श्रीलक्ष्मण को सूर्पणखा ने ब्रह्मचारी कहा जबकि उसने श्रीरामजी की पत्नी श्री सीता जी के दर्शन कर लिए थे। 'फलमूलासिनौ दान्तौ तापसौ ब्रह्मचारिणौ' यहाँ श्रुति का संकेत यह है कि दिन या रात किसी भी समय परनारी से सम्पर्क नहीं करना चाहिए। और अपनी भी पत्नी से सम्पर्क रात्रि में करना चाहिए वह भी निषिद्ध तिथियों व दिनों को छोड़कर और पत्नी की पूर्ण इच्छा होने पर ही।। श्री ।।

संगति– अब दो मन्त्रों में श्रुति इस उत्तर का उपसंहार करती हैं।। श्री ।।

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ।।१४।।

तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते। तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ।।१५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अन्न ही प्रजापति है। उसके भक्षण से बना हुआ रेत अर्थात् पिता का वीर्य प्राण और माता का रज ही रयि है। इन्हीं दोनों के संयोग से प्रजा की उत्पत्ति होती है।। श्री ।।

इस प्रकार जो लोग प्रजापति धर्म का पालन करते हैं वे लोग प्रजा की उत्पत्ति करते हैं परन्तु कूट धर्म में पड़े रहने के कारण उन्हें पितृलोक की

प्राप्ति होती है। ब्रह्मलोक उन गृहस्थों को भी मिलता है, जिसमें चान्द्रायणादि अथवा गीता में विहित तीनों प्रकार का तप, ब्रह्मचर्य एवं परब्रह्म परमात्मा और उनको प्राप्त कराने वाला वैदिक धर्म प्रतिष्ठित है।। श्री ।।

संगति– फिर श्रुति ब्रह्मलोकप्राप्तियोग्यता का वर्णन कर रही है।। श्री ।।

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ।।१६।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जिनके जीवन में 'जिह्म' अर्थात् कपट, 'अनृत' अर्थात् असत्य, 'माया' अर्थात् दम्भ और 'छल' ये विकार नहीं हैं अर्थात् जो कपट असत्यभाषण और दम्भादि दोषों से रहित है, उन धर्मपरायण निवृत्तिवादी गृहस्थों के लिए भी यह ब्रह्मलोक अर्थात् श्रीरामरूप परब्रह्म का साकेतलोक सर्वदा के लिए सुरक्षित है। इस प्रकार प्रश्नोपदिषद् का कबन्ध द्वारा पूँछा हुआ प्रथमप्रश्न पिप्पलाद के उत्तर से सम्पन्न हो गया।। श्री ।।

।। इति प्रथम प्रश्न ।।

।। श्री राघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ द्वितीयप्रश्न ।।

सम्बन्ध– प्रथम प्रश्न में सूर्य, मास और दिन के रूप में प्राण की चर्चा करके उसी का सबसे उत्कृष्ट होना बताया गया है। अब उसी प्राण की वरिष्ठता तथा विशिष्टता का प्रतिपादन करने के लिए द्वितीय प्रश्न का प्रारम्भ किया जाता है। महर्षि पिप्पलाद से भृगुगोत्रीय वैदर्भि प्रश्न करते हैं।। श्री ।।

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन्कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जब पिप्पलाद के उत्तर से सन्तुष्ट हुए कात्यायन कबन्ध चुप हुए तब भृगु गोत्र में उत्पन्न महर्षि वैदर्भि ने पिप्पलाद से तीन प्रश्न किये। भगवन्! रयि और प्राण के मिथुन से उत्पन्न हुई इस प्रजा को कितने देवता धारण-पोषण करते हैं और इसे उन देवताओं में कौन-कौन प्रकाशित करते हैं और उन देवताओं में कौन सबसे वरिष्ठ हैं? यहाँ बाहुलक से बहुवचन में भी तट्प्रत्यय हुआ।। श्री ।।

संगति– इन प्रश्नों को सुनकर महर्षि पिप्पलाद उत्तर देने का उपक्रम कर रहे हैं।। श्री ।।

तस्मै सचाहोवाच आकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निराप: पृथिवी वाङ्मनश्चक्षु: श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्वाणमवष्टभ्य विधारयाम: ।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब पिप्पलाद ने उत्तर दिया कि— एक वार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी,वाणी, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्रांण, त्वक् इन उन्नीस सूक्ष्म अवयवों के देवताओं ने स्पर्धा और अहंकार से यह कहा कि हम जीवात्मा से आधीष्ठित इस शरीर को टिकाते हैं, संभाते हैं और धारण करते हैं।। श्री ।।

संगति– अब प्राण की वरिष्ठता का संकेत करते हैं—

तान्वरिष्ठ: प्राण उवाच। मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति तेऽश्रद्दधाना बभूवु: ।।३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उन्नीसों देवताओं को अहंकार युक्त देखकर वरिष्ठ प्राण ने कहा— "देवताओं मिथ्या मोह के वश में मत होओ। वास्तव में मैं प्राण ही प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, इन पाँच रूपों में अपने को विभक्त करके इस शरीर को टिकाये भी रखता हूँ और धारण भी करता हूँ।" परन्तु देवताओं ने नास्तिक बुद्धि होने के कारण प्राण की बात पर आस्था नहीं रखी।। श्री ।।

संगति– अब प्राण ने इन उन्नीसों देवताओं का मद भङ्ग करने का निश्चय किया।। श्री ।।

सोऽभिमानादूर्ध्वमुत्क्रामत इव तस्मिननुत्क्रामत्यथेतरे सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिँश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङमनश्चक्षु:श्रोत्रं च ते प्रीता: प्राणं स्तुन्वन्ति ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जैसे- भ्रमरों के राजा के उड़ते ही अन्य सभी भौंरे उड़ जाते हैं और उसके प्रस्थान करते ही सभी प्रस्थान कर जाते हैं, उसी प्रकार देवताओं का अभिमान देख कर प्राण जब थोड़ा सा उत्क्रमण करने लगा तब पूर्वोक्त उन्नीसों देवता अपने आप ही ऊपर उठने लगे और उसके प्रस्थान करते ही शरीर को छोड़कर जाने लगे अर्थात् प्राण के बिना

इस शरीर को न तो टिका सके और न ही धारण कर सके, तब उन्नीसों देवता प्रसन्न होकर प्राण की स्तुति करने लगे।। श्री ।।

संगति– अब प्रश्नसमाप्तिपर्यन्त प्राण की स्तुति का वर्णन करते हैं।। श्री ।।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः।
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत्।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब देवता कहते हैं कि— यह प्राण ही अग्नि है, यह प्राण ही सूर्य बन कर तप रहा है, यह प्राण ही इन्द्र तथा वर्षणशील मेघ है, यह प्रण ही सब को धारण करने वाली पृथ्वी तथा जीवन धारिणी रयि है, और यही प्राण सत् अर्थात् जीवात्मा एवं असत् यानि प्रकृति से परे विशिष्टाद्वैतरूप अमृततत्वरूप परमात्मा भी है।। श्री ।।

संगति– अगले मन्त्र में प्राण की सर्वव्यापकता सिद्ध कर रहे हैं।। श्री ।।

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूँषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च।।६।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जिस प्रकार अर रथ के नाभि में स्थित होती है उसी प्रकार सभी ऋग्ः, यजुः, साम और सभी देवता तथा समस्त संसार इस प्राण में ही प्रतिष्ठित हैं।। श्री ।।

संगति– अब प्राण के ऐश्वर्य का प्रतिपादन करते हैं—

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि।।७।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे प्राण! तुम प्रजापति रूप में माता के गर्भ में विचरते हो और तुम्हीं जन्म लेते हो। सारी प्रजायें तुम्हें उपहार देती हैं और तुम प्राणादि पाँच रूपों में प्रतिष्ठा पूर्वक विराजते हो।। श्री ।।

संगति– अब श्रुति प्राण की श्रेष्ठता का विवेचन करती है।। श्री ।।

देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि।।८।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे प्राण! देवताओं के सबसे श्रेष्ठ अग्नि तुम्हीं हो। पितरों की प्रथम स्वधा अर्थात् नान्दीमुखश्राद्ध स्वधा तुम हो। ऋषियों का आचरित सत्य तुम हो और अंगिरावंश में श्रेष्ठ अथर्वा तुम हो।। श्री ।।

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः ।।९।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– श्रुति कहती हैं— हे प्राण! तुम तेज से इन्द्र हो, तुम सबके रक्षक भगवान् रूद्र हो, तुम आकाश में भ्रमण करते हो और तुम्ही नक्षत्रों के स्वामी सूर्य हो।। श्री।।

संगति– फिर श्रुति प्राण की प्रसन्नता में ही अन्य देवताओं के सुख का वर्णन करती हैं।। श्री।।

यदा त्वमभिवर्षस्येमाः प्राण ते प्रजाः।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ।।१०।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे प्राण! जब तुम बादल बनकर बरसते हो तब सभी प्रजाऐं यह सोच कर कि "अब अन्न का प्रचुर उत्पादन होगा" आनन्द में झूम उठती हैं।। श्री।।

व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातारिश्वनः ।।११।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे प्राण! तुम सबसे प्रथम जन्म लेने के कारण 'व्रात्य' हो। तुम अद्वितीय ऋषि तथा सारे संसार के भक्षक महाकाल हो। हम तम्हें भोजन देने वाले सेवक हैं। तुम वायु के भी पिता हो।। श्री।।

या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि।
या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ।।१२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे प्राण! जो तुम्हारी कल्याणमयी मूर्ति वाणी आदि पाँचों कर्मेनिद्रयों में, मन आदि चारो अन्तःकरणों में, तथा नेत्र श्रवणादि पाँचों ज्ञानेद्रियों में प्रतिष्ठित है, उसे हम सबके लिए कल्याणकारिणी बनाओ और हमे छोड़कर उत्क्रमण मत करो।। श्री।।

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि नः ।।१३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– "स्वर्ग में जो कुछ प्रतिष्ठित है वह सब प्राण के वश में है। हे हमारे आत्मीय प्राणदेव! जैसे माँ अपने पुत्रों की रक्षा करती है उसी प्रकार हमारी रक्षा करो। हमें लक्ष्मी और उसकी रक्षा के लिए

बुद्धि प्रदान करो।'' यहाँ प्राण की स्तुति का तात्पर्य एक मात्र परब्रह्म परमात्मा भगवान् राम में है। क्योंकि उन्नीसों देवताओं द्वारा दिये विशेषण परमात्मा से अतिरिक्त कहीं संगत ही नहीं हो सकते। इसलिए ब्रह्मसूत्र में भगवान् व्यास ने भी यहाँ संकीर्तित प्राण शब्द से परब्रह्म परमात्मा का ही ग्रहण किया है। 'अत एव प्राणः।' (१/१/२४)॥ श्री॥

॥ इति द्वितीयप्रश्न ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ अथ तृतीयप्रश्न ॥

सम्बन्ध– द्वितीयप्रश्न में प्राण की श्रेष्ठता और उसकी सर्वातिशयता का वर्णन किया गया है। उसकी कारणजिज्ञासा के लिए तृतीयप्रश्न का प्रारम्भ किया जाता है॥ श्री॥

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ– भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब कोशलदेशनिवासी आश्वलायन ने महर्षि पिप्पलाद से छः प्रश्न किये— भगवान् प्राण कहाँ से जन्म लेता है? वह इस शरीर में कैसे आता है और वह शरीर के सभी अवयवों में किस मार्ग से प्रवेश करता है? वह उत्क्रमण कैसे करता है? वह बाह्य विषयों का अनुसंधान कैसे करता है और वह आत्मा के विषयों का कैसे अनुसंधान करता है?॥ श्री॥

संगति– आश्वलायन के छः प्रश्न सुन कर पिप्पलाद उनकी प्रसंशा करते हैं॥ श्री॥

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान्पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि॥२॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पिप्पलाद ने आश्वलायन से कहा– वत्स! बहुत सुन्दर प्रश्न कर रहे हो। तुम ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् कुलीन ब्राह्मण प्रतीत हो रहे हो। एक तो प्राणतत्व स्वयं दुर्ज्ञेय है और तुम उसके कारण की जिज्ञासा कर रहे हो। अब मैं तुम्हें उसका रहस्य बतलाता हूँ॥ श्री॥

संगति– अब प्राण के जन्मों की चर्चा करते हैं॥ श्री॥

आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे च्छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्शरीरे॥३॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पिप्पलाद ने आश्वलायन से कहा– हे सोम्य। यह प्राण आत्मा से अर्थात् परमात्मा से जन्म लेता है। जिस प्रकार छाया पुरुष का अनुगमन करती है उसी प्रकार परमात्मा के पास से जन्म लेने वाला यह प्राण प्रत्यगात्मा का अनुगमन करता हुआ अपने मन द्वारा किये हुए संकल्प के अनुसार शरीर को प्राप्त करता है। अर्थात् मरणकाल में यदि जीवात्मा का मन विषयों का चिन्तन करता है तब सूकर-कूकर आदि योनियों को प्राप्त करता है। अर्थात् मरणकाल में यदि जीवात्मा का मन विषयों का चिन्तन करता है तब सूकर-कूकर आदि योनियों को प्राप्त करता है और जब मृत्यु के समय कोटि कन्दर्प मनोज मोहन भगवान् श्री सीताराम का स्मरण करता है तब उसे भगवत् सेवा के लिए उपयोगी दिव्यशरीर प्राप्त हो जात है। इसलिए सतत् भगवान् का ही स्मरण करना चाहिये। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

क्षण भंगुर जीवन की कलिका
कल प्रात को जाने खिले न खिले।
मलयाचल शीतल मन्द सुगन्ध
समीर को जाने चले न चले॥
कालिकाल कुठार लिए फिरता,
तन मन सी चोट झिले न झिले॥
भज ले रघुनाथ अरी रसना,
फिर अन्तसमय में हिले न हिले॥ श्री॥

संगति– अब दो प्रश्नों का समाधान करके सम्राट के उदाहरण से तृतीयप्रश्न का समाधान कहते हैं॥ श्री॥

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते एतान्ग्रामानेतान्ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक्पृथगेव संनिधत्ते॥४॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पिप्पलाद कहते हैं– हे आश्वलायन! जैसे कोई सम्राट अपने द्वारा अधिकृत जनों को ग्रामों, जनपदों में 'यहीं रहो' इस प्रकार कह कर नियुक्त करता है, उसी प्रकार यह प्राण अपने प्राण,

अपान, उदान, समान तथा व्यान को ग्राम तुल्य इन शरीरों में नियुक्त करता है॥ श्री॥

संगति– अब नियुक्ति का प्रकार कहते हैं॥ श्री॥

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति॥५॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पायु और उपस्थ में यह प्राण अपानवायु के रूप में तथा नेत्र, श्रवण में, मुख और नासिका से प्रस्थान करता हुआ प्राण के रूप में विराजता है। शरीर के मध्य में यह समानवायु बन जाता है। क्योंकि यह विशिष्ट अन्न को भोजन करने के पश्चात् उसका स्वयं समुन्नयन करता है॥ श्री॥

संगति– अब व्यान की चेष्टा का वर्णन करते हैं॥ श्री॥

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति॥६॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे पिप्पलाद! यह जीवात्मा अपने मित्र परमात्मा के साथ प्रत्येक शरीर में हृदयदेश में रहता है। वहाँ प्रत्येक हृदय में सौ-सौ नाड़ियाँ उन प्रत्येक की सौ-सौ शाखायें और उनमें प्रत्येक शाखा की बहत्तर-बहत्तर शाखाएँ इस प्रकार प्रत्येक शरीर में हजारों नाड़ियाँ होती है और उनमें रक्त का प्रवाह दौड़ाने के लिए नियुक्त होकर यह व्यान संज्ञा को प्राप्त कर लेता है॥ श्री॥

संगति– अब उदान के कार्य का वर्णन करते हैं—

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम्॥७॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे आश्वलायन! इसके अनन्तर उर्ध्वगामिनी अर्थात् ऊपर जाने वाली सुषुम्ना नाड़ी से यह प्राणवायु जब ऊपर जाता है तब इसे उदान कहते हैं। यह पुण्य धर्म करने वालों को स्वर्ग तथा पाप करने वाले को नरक ले जाता है। और पाप तथा पुण्य इन दोनों से जीव को मनुष्यलोक में ले जाता है॥ श्री॥

संगति– अब आश्वलायन के पाँचवे प्रश्न का समाधान करते हैं॥ श्री॥

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥८॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– चूँकि बाह्यप्राण से आन्तरप्राणों की रक्षा होती है इसलिए चक्षुः सम्बन्धी आन्तरप्राण पर कृपा करते हुए बाह्यप्राण के रूप में भगवान् सूर्य ही उदित होते हैं। और पृथ्वी अभिमानी देवता ही पुरुष का बाह्य अपान है। उसी से आन्तर अपान का नियन्त्रण होता है। इन दोनों के बीच में रहनेवाला आकाश ही बाह्य समान है उसी से आन्तर समान की सुरक्षा होती है और उसी में रहने वाला वायु ही व्यान है॥ श्री॥

संगति– अब उदान की व्याख्या करते हैं॥ श्री॥

तेजो ह वा उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ॥९॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे आश्वलायन! तेज ही अर्थात् अग्नि ही पुरुष का उदान है इसी कारण जब पुरुष का तेज शान्त हो जाता है तब वह ऊपर अर्थात् स्वर्ग आदि लोकों में नहीं जा सकता और अपने मन में विलीन होने वाले इन्द्रियों के साथ वह संसार सागर में आ जाता है। क्योंकि ऊर्ध्व गमन न होने से चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, रसना और घ्राण इन पाँच इन्द्रियों के साथ मन को अपने साथ घसीटता हुआ जीवात्मा पुनर्भव अर्थात् जन्म-मरण को प्राप्त होता रहता है॥ श्री॥

संगति– अब संकल्प को ही शरीर का कारण कहते हैं—

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथासङ्कल्पितं लोकं नयति ॥१०॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इसलिए यह जीवात्मा जिस संकल्प वाले चित्त से युक्त होकर प्राण को प्राप्त होता है, प्राण उसी तेज के साथ अर्थात् उसी संकल्प ज्ञान के साथ जीवात्मा को उसके ही संकल्प के अनुसार उन्हीं द्वारा रचित लोकों में ले जाता है॥ श्री॥

संगति– अब फलश्रुति का वर्णन करते हैं॥ श्री॥

य एवं विद्वान्प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥११॥

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा। अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति ॥१२॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इस प्रकार जानता हुआ जो प्राणों को समझता है तथा छहों प्रश्नों को जानकर जो भगवत् रूप में प्राण की उपासना करता है उसकी संतान कभी नष्ट नहीं होती है। अमृत हो जाता है अर्थात् मरणधर्म से ऊपर उठ जाता है। इसी तथ्य में श्रुति द्वारा एक श्लोक प्रकट किया जा रहा है ॥ श्री ॥

परमात्मा से प्राण की उत्पत्ति को, संकल्प द्वारा उसके प्रतिशरीर-गमन को, आन्तर प्राणों के रूप में प्राणों की संस्थिति को, प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान की व्यापकता एवं महाभूतरूप में बाह्यता तथा प्राणादि रूप में प्राण की अध्यात्मता को जानकर साधक अमृतरूप परमात्मा को प्राप्त करके उनके ब्रह्मानन्द महामृत का स्वाद लेता है। सिद्धान्त को दृढ़ करने के लिए द्विरुक्ति की गयी और इति से तृतीय प्रश्न की समाप्ति सूचित की गयी ॥ श्री ॥

॥ इति तृतीयप्रश्न ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

॥ अथ चतुर्थप्रश्न ॥

सम्बन्ध भाष्य– श्रुति ने प्राण के साथ जीवात्मा के सम्बन्ध का वर्णन किया। अब प्राण के अतिरिक्त भी शरीर का कोई आधिष्ठाता है क्योंकि इस शरीर का प्राण मुख्य अंग है। जैसे घर किसी विशेष व्यक्ति के लिए बनाया जाता है। उसी प्रकार उन्नीस अवयवों वाला यह शरीर भी किसी अलौकिक गृहस्वामी के लिए बनाया गया है। इसलिए उसके भी कुछ क्रियाकलाप होने चाहिए। इसी सन्दर्भ में पिप्पलाद से सौर्यायणी ने पाँच प्रश्न किये ॥ श्री ॥

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ– भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥१॥

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब गर्गगोत्र में उत्पन्न सौर्यायणी ने महर्षि [illegible]लाद से पाँच प्रश्न किये— भगवन्! इस पुरुषमयशरीर में कितने लोग [illegible] इसमें कितने जागते हैं? इसके स्वप्न व्यापारों को कौन देवता

देखता है ? इसके सुख का अनुभव किसे होता है ? और सभी लोग किसमें प्रतिष्ठित रहते हैं ? ।। श्री ।।

संगति– अब पिप्पलाद उत्तर देते हैं ।। श्री ।।

तस्मै च होवाच यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पिप्पलाद कहते हैं— हे गार्ग्य ! जिस प्रकार सायंकाल सूर्य की किरणें सूर्य के अस्त होते ही उनके तेजोमय मण्डल में छिप जाती है एवं प्रातः काल उनके उदय होते ही उन्हीं से प्रकट हो जाती हैं उसी प्रकार परमात्मा के स्थित रहने पर इन्द्रियों का सम्पूर्ण व्यापार मन में स्थिर हो जाता है। उस समय पुरुष न कान से सुनता है, न आँख से देखता है, न ही रसना से रस लेता है, न ही नाक से सूँघता है, न ही त्वक् से स्पर्श करता है, न ही वाणी से बोलता है, न ही चरण से चलता है, न ही हाथ से लेता है, न ही पायु से विसर्जित करता है और न ही उपस्थ से आनन्द प्राप्त करता है। उस समय 'यह सो रहा है' ऐसा लोग पुरुष को कहते हैं। अर्थात् इस शरीर में जीवात्मा ही सोता है। यह प्रथम प्रश्न का उत्तर है ।। श्री ।।

संगति– अब द्वितीय प्रश्न का उत्तर देते हुए पाँचों अग्नियों का रूपक प्रस्तुत करते हैं ।। श्री ।।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन्पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद् गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ।।३।।

यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः । मनो ह वाव यजमानः । इष्टफलमेवोदानः । स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे गार्ग्य ! इस शरीररूप पुर में पाँच प्राण ही अग्नि के रूप में जागते हैं। जिसमें अपान ही गार्हपत्य है और

अन्वाहार्य पचन दक्षिणाग्नि ही व्यान है तथा गार्हपत्य से प्रणयन होने के कारण आहवनीय ही प्राण है। यज्ञ की उच्छ्वास निःस्वासरूप आहुतियों को वह समन्वित करता है इससे वह समान है, मन ही यजमान है और उसका इष्टफल ही उदान है ।। श्री ।।

संगति– अब तृतीयप्रश्न का उत्तर देते हैं ।। श्री ।।

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति। यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुश्रृणोति। देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुतं चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे सौर्यायणि! इस शरीर में रह कर आत्मदेव स्वप्न की महिमा का अनुभव करता है। जाग्रत अवस्था में 'जो देखा है और जो कभी नहीं देखा, जाग्रत में जो सुना है और जो कभी नहीं सुना है, देश दिगन्तरों से जो अनुभव किया है और जो कभी नहीं अनुभव किया है, वह सब दृष्ट-अदृष्ट श्रुत-अश्रुत, अनुभूत और अननुभूत, जीवात्मा स्वप्न में देखता, सुनता और अनुभव करता है ।। श्री ।।

संगति– अब चौथे प्रश्न का समाधान करते हैं ।। श्री ।।

स यदा तेजसाभिभूतो भवत्यत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्शरीर एतत्सुखं भवति ।।६।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे सौर्यायणी! जब यह जीवात्मा उदान रूप तेज से अभिभूत हो जाता है तब वह गाढ निद्रा में सोता हुआ आनन्द में मग्न हो जाता है, तब यह स्वप्नों को भी नहीं देखता और तब इस जीवात्मा को ही सुख होता है। क्योंकि सुसुप्तिआनन्द की अवस्था है ।। श्री ।।

संगति– अब सभी शरीरधर्मों की परमात्मा में ही प्रतिष्ठा कह रहे हैं ।। श्री ।।

स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।७।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे सोम्य! जिस प्रकार सायंकाल सभी पक्षी अपने वस्त्र के समान आच्छादित वृक्ष के घोंसले में प्रविष्ट हो जाते हैं उसी

प्रकार मन के सहित सभी इन्द्रियों के व्यापार परमात्मा में ही प्रतिष्ठित हो जाते हैं ।। श्री ।।

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहंकारश्चाहंकर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ।।८।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चक्षु आदि इन्द्रियाँ और उनके विषय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा प्राण और तेज ये सभी परब्रह्म परमात्मा में ही विलीन हो जाते हैं ।। श्री ।।

संगति– अब सब का आधारभूत जीवात्मा कहाँ प्रतिष्ठित होता है ? इस पर कहते हैं ।। श्री ।।

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।९।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इस प्रकार यही रूप का द्रष्टा, स्पर्श का स्प्रष्टा, शब्दों का श्रोता, गन्ध का भान करने वाला, रस का स्वाद लेने वाला, मननीय का मनन करने वाला और बोधनीय का बोध करने वाला, करणीय का सम्पादन करने वाला, अपने और परमात्मा के बीच सेवक-सेव्यभाव सम्बन्ध को जानने वाला यह जीवात्मा अन्ततोगत्वा अखण्डपरमानन्दसम्पन्न-श्रीरामरूप परमात्मा में विलीन हो जाताहै ।। श्री ।।

संगति– अब ब्रह्मविज्ञान की स्तुति करते हैं ।। श्री ।।

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य। स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः ।।१०।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे सोम्य ! जो व्यक्ति परमात्मा को अच्छाय अर्थात् पाप की छाया से रहित, माया रूप छाया से दूर, अव्यक्त जीवात्मारूप छाया से युक्त एवं अकार अर्थात् वासुदेव जिनकी छाया है ऐसे महाविष्णु

रूप, अशरीर अर्थात् अव्यक्त शरीर वाले तथा अलोहित लोहित अर्थात् रक्त वर्ण से भिन्न श्यामवर्ण एवं रजोगुण से अतीत समझता है, वह परम अक्षर परमात्मा को प्राप्त कर लेता हैं और सर्वस्वरूप परमात्मा को जानकर सर्वज्ञ जैसा हो जाता है।। श्री।।

संगति– फिर इसी अर्थ को संक्षिप्त करके कहते हैं।। श्री।।

विज्ञानात्मा सह देवेश्च सर्वैः प्राणा भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र।
तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति।।११।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे सोम्य! दसों इन्द्रियों, चारो अन्तः करणों के सभी देवताओं के साथ पाँचों प्राण पंच महाभूत एवं विज्ञानात्मा ये सब जिस परब्रह्म अक्षर श्रीराम में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उन अक्षर परब्रह्म को जो जान लेता है वह सर्वज्ञ होकर सर्वस्वरूप परमात्मा में प्रविष्ट हो जाता है। इति शब्द प्रश्नसमाप्ति का सूचक है।

।। इति चतुर्थप्रश्न ।।

।। श्रीराघवः शन्तनोतु ।।

।। अथ पञ्चमप्रश्न ।।

सम्बन्ध– सगुण और निर्गुण भेद से ब्रह्म दो प्रकार का है और दोनों का वाचक है ॐ। सगुण ब्रह्मा का निरूपण वह तब करता है जब प्रणव की व्युत्पत्ति पक्ष का अश्रय किया जाता है। इन व्युत्पत्तियों की हमने ईशावास्योपनिषद् में चर्चा की है। जब प्रणव में अव्युत्पत्ति पक्ष का आश्रय होता है, तब वह निर्गुण निराकार परमात्मा का बोध कराता है। इस पर भी हम ईशावास्योपनिषद में चर्चा कर चुके हैं। इसी ओंकार की उपासना का वर्णन करने के लिए पंचमप्रश्न का प्रारम्भ होता है।। श्री।।

अथ हैनं शैव्यः सत्यकामः पप्रच्छ। स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायेणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत। कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इसके अनन्तर शिवि के पुत्र सत्यकाम ने पिप्पलाद से पूछा– भगवन्! धर्मयुक्त मानवों में जो कोई एक साधक शरीर के त्याग के समय ओंकार का अभीष्ट रूप से ध्यान करता है, वह किस लोक को जीतता है? अर्थात् वह अपने प्रणवध्यान के अधिकार से किस लोक को प्राप्त करता है।। श्री।।

संगति– अब पिप्पलाद इस प्रश्न का समाधान करते हैं ।। श्री ।।

तस्मै स होवाच । एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ।। २ ।।

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ– पिप्पलाद ने निश्चय पूर्वक सत्काम से कहा– हे सत्यकाम ! पर और अपर भेद से ब्रह्म दो प्रकार का है। पर को सगुण ब्रह्म और अपर को निर्णुण ब्रह्म कहते हैं। इन दोनों का ही ओंकार वाचक है। इसी को अवलम्बन मान कर विद्वान् पर और उपर अर्थात् सगुण और निर्गुण ब्रह्म में किसी एक को प्राप्त कर लेता है ।। श्री ।।

व्याख्या– प्रश्न– यहाँ सगुण ब्रह्म को पर और निर्गुण को अपर क्यों कहा गया है ? जबकि माया से ढके होने के कारण सगुण ब्रह्म को अपर तथा निर्गुण ब्रह्म को पर कहना चाहिए ।। श्री ।।

उत्तर– ऐसा मत कहो 'अणोरणीयान् महतो महीनयान्' महामायापति को दोषों से भरी हुई बिचारी माया कैसे ढक सकती है। इसलिए सम्पूर्ण कल्याण गुणगणों का निलय होने के कारण सगुणब्रह्म 'पर' है क्योंकि वह साधकों को बहुत सुलभ है। निर्गुणब्रह्म अपने गुणों को छिपाने के कारण बहुत ही दुर्लभ एवं दुराराध्य है। इसीलिए श्रुति ने निर्गुणब्रह्म को अपर कहा। यदि कहें कि सगुणब्रह्म के परत्व में क्या प्रमाण हैं ? तो हमारा निवेदन है कि श्रीमद्भागवद् गीता में सगुणब्रह्म श्रीकृष्ण के प्रति अर्जुन द्वारा परब्रह्म शब्द का उच्चारण ही परमप्रमाण है। क्योंकि गीता के श्रीकृष्ण सगुण ब्रह्म ही हैं निर्गुण ब्रह्म नहीं। उन्हीं सगुण साकार ब्रह्म को अर्जुन (गीता १०/१२) में परब्रह्म शब्द से सम्बोधित करते हैं—

परब्रह्म परमधाम पवित्रं परमं भवान् ।।

—*(गीता १०/१२)*

किं बहुना, जब (गीता- १२/९) में अर्जुन ने यह पूँछा कि— हे प्रभो। जो निरन्तर अनन्ययोग से युक्त होकर प्रेमलक्षणाभक्ति से आप परमात्मा की उपासना करते हैं, तथा जो उसके विपरीत अव्यक्त अक्षर की उपासना करते हैं इन दोनों में श्रेष्ठ योगवेत्ता कौन है ? इस पर भगवान् ने उत्तर दिया कि— जो लोग श्रेष्ठ आस्तिक बुद्धि से युक्त होकर, नित्ययोगसम्पन्न बुद्धि से मुझ सगुण साकार परमात्मा में ही अपना मन लगाकर उपासना करते हैं, वे श्रेष्ठ योगी हैं और वे मेरे द्वारा भी पूजित होते हैं। भगवान् के

इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि निर्गुण और सगुण ये दोनों ही परब्रह्म के रूप में कोई किसी से छोटा-बड़ा नहीं परन्तु साधना की दृष्टि से सगुणब्रह्म निर्गुणब्रह्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसीलिए रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुण जान नहि कोई ।।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होई ।। श्री ।।

संगति– अब एक मात्रिक ओंकार के ध्यान का वर्णन कर रहे हैं ।। श्री ।।

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ।।३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– प्रणव में 'अ' 'उ' 'म्' ये तीन अक्षर एवं ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत ये तीन मात्राएँ होती हैं। इनमें जो ह्रस्वमात्रा का ध्यान करता हुआ श्री लक्ष्मणरूप विराटब्रह्म की उपासना करता है, वह उसी ध्यान से सम्प्रेषित होकर शीघ्र ही भगवत्प्रसादरूप भोगभूमि में आ जाता है तथा ऋचाओं द्वारा मनुष्य लोक को प्राप्त करता है और वहाँ चान्द्रायणादि तप एवं ब्रह्मचर्य तथा आस्तिक बुद्धि से सम्पन्न होकर दिव्य भगवान् की महिमा का अनुभव करता है ।। श्री ।।

संगति– अब द्विमात्रिक ओंकार के ध्यानफल का कीर्तन करते हैं ।। श्री ।।

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम् । स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– और जो द्विमात्रिक ओंकार के ध्यान से मन में युक्त होता है अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ मात्रओं के व्याज से श्री लक्ष्मण शत्रुघ्नात्मक विश्वविराट हिरण्यगर्भ ब्रह्म का भजन करता है, उसे यजुर्वेद की श्रुतियाँ अन्तरिक्ष में ले जाकर चन्द्रलोक पहुँचा देती है। और वहाँ वह भगवदीय विभूतियों का अनुभव करके फिर संसार में लौट आता है ।। श्री ।।

संगति– अब त्रिमात्रिकध्यान की महिमा का वर्णन कहते हैं ।। श्री ।।

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनेवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स

पाप्मना विनिर्मुक्तः सा सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परातपरं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। तदैतौ श्लोकौ भवतः ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– और जो विशिष्टसाधक ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इन तीन मात्राओं से युक्त ओंकार द्वारा श्री लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत रूप विश्व तैजस् प्राज्ञात्मक श्रीरामरूपपरब्रह्म की उपासना करता है, वह तेजोमय सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है और उसे सामवेद की श्रुतियाँ ब्रह्मलोक पहुँचा देती है। जिस प्रकार केचुल से सर्प मुक्त हो जाता है उसी प्रकार वह ओंकार का ध्यान करने वाला व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है। और वह इस जीव घनरूप संसारबंधन से मुक्त होकर परमब्रह्म परमात्मा को निहार लेता है। यह संसार जीवबहुल है, इसलिए श्रुति ने इसे जीवघन कहा। इस सम्बन्ध में श्रुति के दो श्लोक प्रसिद्ध हैं॥ श्री॥

संगति– अब दो श्लोकों में प्रश्न का उपसंहार कर रहे हैं॥ श्री॥

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुकताः।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ।।६।।
ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ।।७।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– हे सत्यकाम! इस ओंकार में मरणधर्म से युक्त ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत ये तीन मात्रायें हैं अर्थात् इनमें से एक-एक की उपासना करके व्यक्ति आवागमनों को प्राप्त करता रहता है। ये एक दूसरे से मिली हुयी हैं और ये कभी अलग नहीं होतीं। इनमें प्रथम में बाह्य द्वितीय में मध्यम और तृतीय में आभ्यान्तर क्रिया होती रहती है। इनको जान कर अखण्ड ओंकार से परमात्मा का ध्यान करने वाला व्यक्ति कभी कम्पित नहीं होता। अर्थात् घनघोर दुःख में भी भगवान् का भजन नहीं छोड़ता॥ श्री॥

वह ऋग्वेद की श्रुतियों से पृथ्वीलोक तथा यजुर्वेद की श्रुतियों से अन्तरिक्ष चन्द्रलोक एवं सामवेद की श्रुतियों से ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है और फिर अखण्ड ओंकार द्वारा परब्रह्म की उपासना करके उस शान्त अमृत अजर तथा अभय परब्रह्म को प्राप्त करता है जिसे ब्रह्मवेत्ता लोग जानते हैं॥ श्री॥

।। इति पञ्चमप्रश्न ।।

।। श्रीराघवः शान्तनोतु ।।

।। अथ षष्ठप्रश्न ।।

सम्बन्ध– पंचमप्रश्न के पञ्चममंत्र में श्रुति ने यह निर्देश किया है कि— प्रणव के ध्यान से साधक सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर जीवों से घनीभूत इस संसार से ऊपर उठकर हृदय में शयन करने वाले परमपुरुष का साक्षात्कार कर लेता है। इस पर यह जिज्ञासा होती है कि— वह पुरुष कितने कलाओं का होता है ? कैसा उसका स्वरूप होता है और कितने उसके अवयव होते हैं ? इन सब का समाधान करने के लिए षष्ठप्रश्न का प्रारम्भ किया जाता है।

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ। भगवन्हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत्। षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ। तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति। समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुम्। स तूष्णीं रथमारूह्य प्रवव्राज। तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ।।१।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इसके अनन्तर महर्षि पिप्पलाद से भरद्वाज के पुत्र सुकेशा ने प्रश्न किया— भगवन्! मैं जो प्रश्न करने जा रहा हूँ उसमें केवल जिज्ञासा ही नहीं साथ-साथ अल्पज्ञता भी हैं। इसके कारण मुझे निरुत्तर होना पड़ा। एक बार कोशल देखवासी हिरण्यनाभ नामक राजकुमार ने मेरे पास आकर मुझ में गुरुबुद्धि से प्रणाम आदि करके मेरा नाम लिए बिना ही आदर पूर्वक पूँछा— हे भरद्वाज पुत्र। क्या आप सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानते हैं ? मैंने सरलता से कहा— मैं सोलह कलाओं वाले पुरुष को नहीं जानता। यदि जानता होता तो तुम्हें क्यों न बतलाता। जो साधन के सम्बन्ध में झूठ बोलता है वह पूरे शरीर से सूख जाता है, इसलिए मैं तुमसे असत्य नहीं बोल रहा हूँ। अर्थात् मैं तुम्हारा वंचन नहीं कर रहा हूँ। इस प्रकार मेरी स्वभावसिद्ध सरलता देख कर हिरण्यनाभ चुप हो गया और वह रथ पर चढ़कर अपने घर लौट गया तथा मुझे निरुत्तर करने का प्रायश्चित करने के लिए मेरी ऋजुता से प्रभावित होकर, उस षोड़शकलात्मक पुरुष को जानने के लिए राजकुमार हिरण्यनाभ महात्मा बन गया। अब मैं आप से पूँछ रहा हूँ कि— वह सोलह कलाओं बाला पुरुष कहाँ रहता है और उसकी कलाओं के कौन-कौन से नाम हैं ? ।। श्री ।।

संगति– पिप्पलाद सुकेशा के प्रश्न का समाधान कर रहे हैं ।। श्री ।।

तस्मै स होवाच । इहैवान्तःशरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ।।२।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– पिप्पलाद ने कहा— हे सुकेशा ! जिस पुरुष में ये सोलह कलायें प्रकाशित होती है, वह इसी शरीर के भीतर विराजमान है ।। श्री ।।

संगति– अब इसकी उत्पत्ति कहते हैं—

स ईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ।।३।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– इस शरीर में रहने वाले षोडश कलात्मक पुरुष ने जिज्ञासा पूर्वक निरीक्षण किया कि किसके उत्क्रमण करने पर मैं उत्क्रमण करुँगा और किसके प्रतिष्ठित होने पर मैं प्रतिष्ठित होऊँगा, अर्थात् मेरा उत्क्रमण और मेरी प्रतिष्ठा किसके अधीन है ।। श्री ।।

संगति– अब षोडशकला वाले पुरुष की रचना का प्रकार कह रहे हैं—

स प्राणमसृजत् प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः ।
अन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च ।।४।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– उस सोलह कला वाले पुरुष ने अपनी अनन्त ईक्षणशक्ति से सबके प्राणाधार हिरण्यगर्भ ब्रह्म का सृजन किया। इसके अनन्तर कर्मफलों को धारण करने वाली शक्ति श्रद्धा की रचना की, अनन्तर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, दशों इन्द्रियाँ, मन, तप, मन्त्र, कर्म, चौदह लोक एवं उनमें भिन्न-भिन्न नामों की रचना की ।। श्री ।।

संगति– अब पुरुष में सोलह कलाओं के विश्राम की चर्चा करते हुए दृष्टांत दे रहे हैं—

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यन्ते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ।।५।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जिस प्रकार समुद्र ही जिनका गन्तव्य

लक्ष्य है, ऐसी जल बहाने वाली नदियाँ तब तक भिन्न-भिन्न नाम रूप वाली रहती हैं, जब तक सागर को नहीं प्राप्त कर लेती परन्तु सागर को प्राप्त करके वे अपना नाम रूप समाप्त कर देती हैं और उन्हें समुद्र ही कहा जाता है। उसी प्रक़ार ये सभी सोलह कलायें पुरुष से अलग होकर पृथक् नाम-रूपवाली रहती हैं और पुरुष को प्राप्त करके इनके नाम-रूप भी समाप्त हो जाते हैं। और वह पुरुष अकल तथा अमृत कहा जाता है ।। श्री ।।

संगति– अब इसी तात्पर्य को श्लोक में कह रहे हैं ।। श्री ।।

अरा इव रथनामौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः। तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ।।६।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– जिस प्रकार रथ की धुरी में छोटी-छोटी अरायें लगी रहती हैं उसी प्रकार सारी कलायें जिस परमात्मा में प्रतिष्ठित है उस जानने योग्य पुरुष को जानो, जिससे तुम्हें मृत्यु कष्ट न दे सके। इति शब्द यहाँ समाप्ति का सूचक है ।। श्री ।।

संगति– अब सभी प्रश्नों का उपसंहार सूचित करते हैं ।। श्री ।।

तान्होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद। नातः परमस्तीति ।।७।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब सुकेशा, सत्यकाम, आश्वलायन सौर्यायणी, वैदर्भि और कबन्धी से पिप्पलाद ने कहा— ऋषि कुमारो! मैं इतना ही परब्रह्म के सम्बन्ध में जानता हूँ। ऋषि कुमारों ने जिज्ञासा की— क्या इससे भी अधिक कुछ ज्ञातव्य हैं? पिप्पलाद ने कहा— 'नातः परम्' हे ऋषिपुत्रों! न ही कुछ परब्रह्म से श्रेष्ठ है और न ही परब्रह्म के अतिरक्ति कुछ जिज्ञासनीय। भगवान् ही सबसे श्रेष्ठ है, और भगवान् ही सबसे जिज्ञासनीय ।। श्री ।।

संगति– उपदेश के अनन्तर जिज्ञासार्थ आये हुए ऋषिगण जिज्ञासाओं के शान्त होने पर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं ।। श्री ।।

ते तमर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ।।८।।

रा०कृ०भा० सामान्यार्थ– अब सुकेशा, सत्यकाम, आश्वलायन सौर्यायणी, वैदार्भि और कबन्धी इन छहों ऋषियों ने उन महर्षि पिप्पलाद

की अर्चना करते हुए कहा— आप हम सबके पिता हैं क्योंकि आपने हमें नया जन्म दिया। इस ब्रह्मविद्या के लिए हमें उपनीत किया। अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्म विद्या का उपदेश किया। हमको अलौकिक अध्यात्म का भोजन दिया। और हमें जन्ममरण के भय से छुड़ाया। इसलिए नीति में वर्णित पाँचों प्रकार के पिताओं का लक्षण आप में घट रहा है। आपने हमें अविद्या रूप महानदी से पार कर दिया। यहाँ वर्तमान के समीपवर्ती भूतकाल में लट्लकार का प्रयोग हुआ है। अर्थात् हे महर्षि ! हम अभी-अभी अविद्या महानदी से तर गये। आप जैसे परमपूज्य, मन्त्रद्रष्टा ऋषि को नमस्कार और आप जैसे परमेश्वर के यथार्थ रूप को जानने वाले ब्रह्मवेत्ता को नमस्कार। इस प्रकार प्रणाम करके पिप्पलाद से अनुज्ञा पाकर छहों ऋषिकुमार ब्रह्मविद्वरिष्ठ होकर अपने-अपने आश्रम को पधार गये ॥ श्री ॥

पिप्पलाद शाखा अथर्व श्रुति की यह सुन्दर,
प्रश्नोपनिषद् नाम परम अध्यात्म सुधाभर।
षटऋषिपुत्र विहित प्रश्नावलि अतिमनभायी,
लसित विशिष्टाद्वैतवाद वेदान्त लुनायी ॥

सीताराम कृपा कलित
रामानन्द सुप्रीति धनि।
श्री राघवकृपा भाष्य शुभ,
रामभद्र आचार्य भनि ॥

॥ इति षष्ठप्रश्न ॥

॥ इति श्रीचित्रकूटपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीरामानन्दचार्य प्रणीत श्रीप्रश्नोपनिषद् का श्रीराघवकृपाभाष्य सम्पूर्ण हुआ ॥ श्री ॥

॥ श्रीराघवः शन्तनोतु ॥

●

हिमालय
ओङ्कार
जप
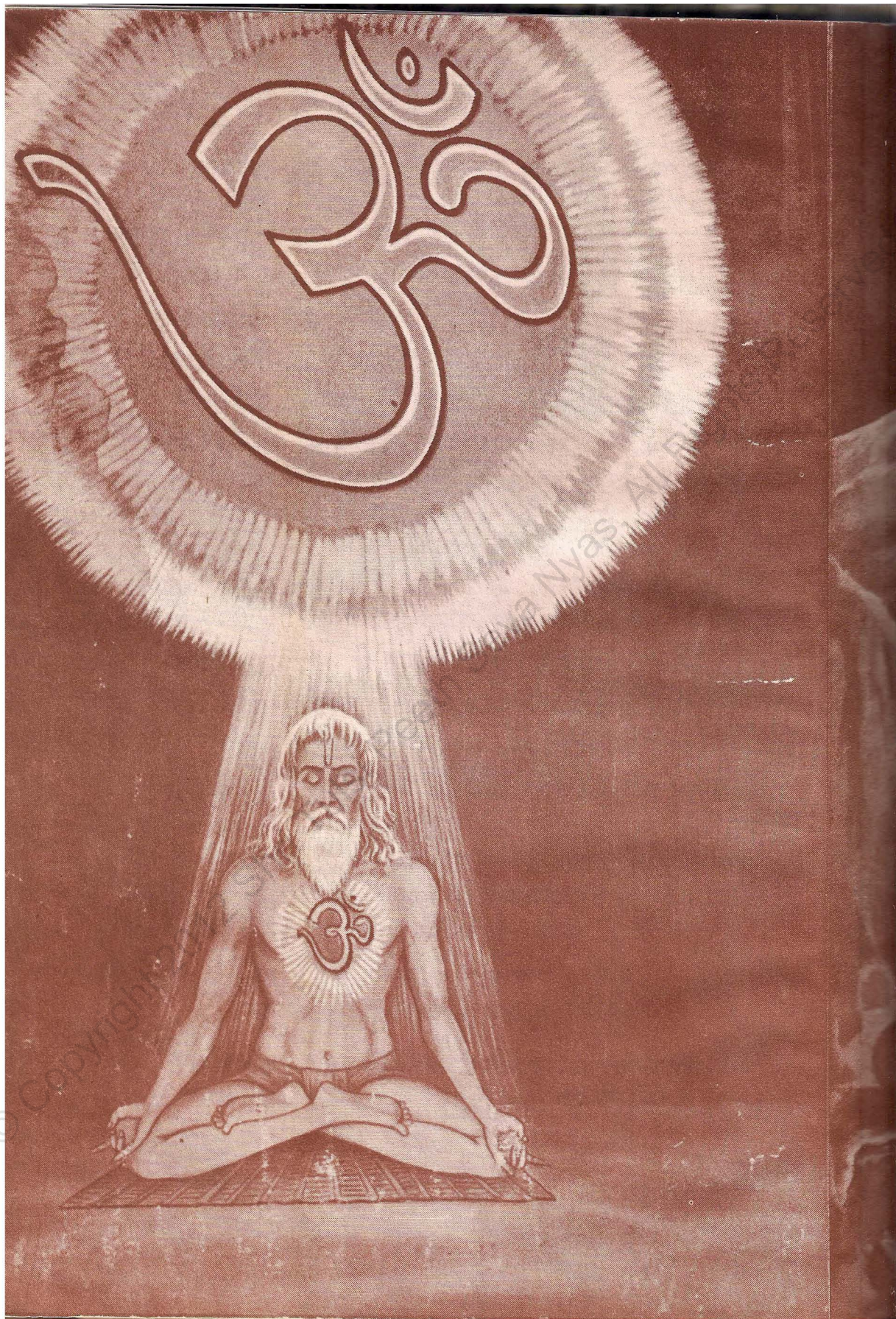
।। श्रीः ।।

ध्रुवमिदं, विश्वस्य विश्वेऽपि विचरकाश्चामनन्ति यज्जीवेनात्यन्तिकं सुखं नोपलब्धुं शक्यते केवलैः सांसारिकैर्भोगैः। तत्कृते तु तैः जगन्नियन्तुः परमात्मनः शरणमेवाङ्गीकरणीयम्। अनादिकालादेव सर्गेऽस्मिन् ब्रह्मजिज्ञासासमाधानपराः विचाराः प्रचलन्ति। विषयेऽस्मिन् सर्वे दार्शनिकाः सहमता यद्वेदैरेवास्य गूढरहस्यात्मकस्य परब्रह्मणः प्रतिपादनं सम्भवम्।

परब्रह्मणो निश्वासभूता अनन्तज्ञानराशिस्वरूपाः वेदाः ज्ञानकर्मोपासनाख्येषुत्रिषु काण्डेषु विस्कृताः सन्ति। एषां ज्ञानकाण्डाख्य उपनिषद्भागे वेदान्तापरनामधेया ब्रह्मविद्या वैशद्येन विर्वोचता व्याख्याता चास्ति। आसामुपनिषदां सम्यग्ज्ञानेनैव ब्रह्मज्ञानं तेन च भवदुःखनिवृत्तिरित्युपनिषदां सर्वातिशायिमहत्वं राद्धान्तयन्ति मनीषिणः। आसु प्रश्नोत्तरात्मकातिरमणीयसुमम्यसरलशैल्या जीवात्मपरमात्मनोर्जगतश्च विस्तृतं व्याख्यानं कृतमस्ति। अनेकैर्महर्षिभिरनेकैः प्रकारैरुद्भावितानां ब्रह्मविषयकप्रश्नानां समाधानानि ब्रह्मवेतृणां याज्ञवल्क्यादिमहर्षीणां मुखेभ्य उपस्थापयन्त्युपनिषदः। भगवता वेदव्यासेन ब्रह्मसूत्रेषु भगवता श्रीकृष्णेन च श्रीगीतायामासामेव सारतत्वं प्रतिपादितम्।

भारतीयदर्शनानामाधारभूता इमे त्रयो ग्रन्थाः विभिन्नसम्प्रदायप्रवर्तकैराचरयैर्व्यख्याताः। एष्वद्वैतवादिन आद्यशङ्कराचार्याः प्रमुखा, अन्ये च द्वैतशुद्धाद्वैतद्वैताद्वैतशिवाद्वैतदिवादिनो विद्वांसः स्वस्वमतानुसारमुपनिषदः व्याख्यापयांबभूवुः।

अथ साम्प्रतिकभारतीयदार्शनिकमूर्धन्यैर्वेदवेदाङ्गपारङ्गतैर्धर्मध्वजधारिधौरेयैः श्रीरामानन्दाचार्यैः श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यमहाराजैर्विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तमनुसृत्य कृतामिदमुपनिषदां **''श्रीराघवकृपाभाष्यम्''** सर्वत्रैवाभिनवविचारैर्व्युत्पत्तिभिश्चालङ्कृतं विभाति। भाष्येऽस्मिन्नाचार्यचरणैः शब्दव्युत्पत्तिचातुरीचमत्कारेण सर्वोपनिषदां प्रतिपाद्यः भगवान् श्रीराम एवेति सिद्धान्तितम्। मध्ये मध्ये गोस्वामिश्रीतुलसीदासग्रन्थेभ्यः ससंस्कृतरूपान्तरमुदाहृता अंशविशेषासुवर्णे सुरभिमातन्वन्ति। श्रीराघवपदपद्ममधुकराः भक्ता अत्रामन्दानन्दमाप्नुयुरिति भगवन्तं श्रीराघवं निवेदयति।

डॉ. शिवरामशर्मा
वाराणसी